आत्मनोमोक्षार्थंजगद्धितायच

विवैक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्दभावधाराकी प्रमुखहि[illegible] मासिकी

वर्ष–१८ जुन–१९९९ अंक–६
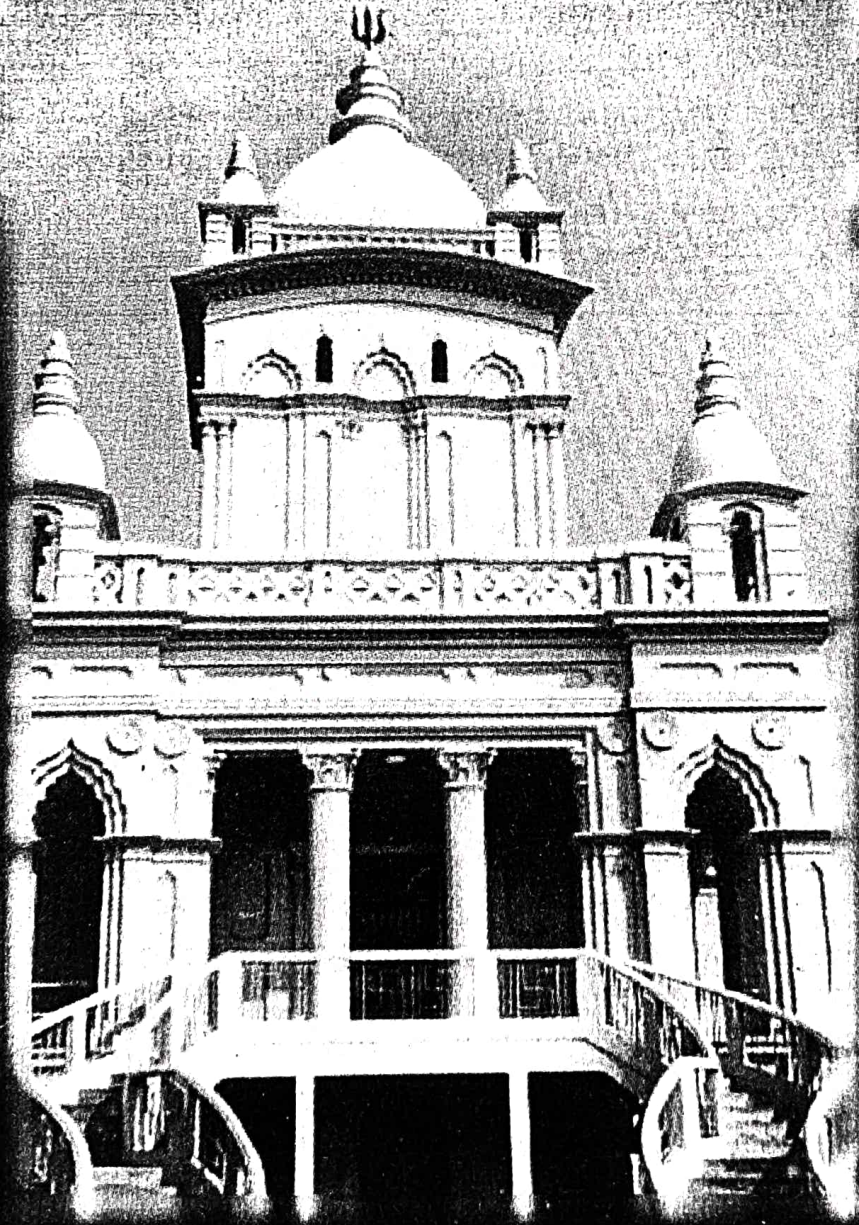
रामकृष्णनिलयम,
जयप्रकाशनगर,
छपरा (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

१७३. डॉ० विनया पेण्डसे, उदयपुर (राजस्थान)
१७४. सन्तोष बोनी, रामवन (जम्मू एवं कश्मीर)
१७५. श्री राजीभाई बी० पटेल, सूरत (गुजरात)
१७६. श्री प्रकाश देवपुरा—उदयपुर (राजस्थान)
१७७. श्री एस० के० मुन्दरा, जामनगर (गुजरात)
१७८. डॉ० मोहन बन्सल, आनन्द (गुजरात)
१७९. अडकिया कन्सलटेन्ट्स, प्रालि० मुम्बई
१८०. सुश्री एस० पी० त्रिवेदी—रोजकोट (गुजरात)
१८१. अद्वैत आश्रम, मायावती—(उ० प्र०)
१८२. श्री शत्रुघ्न शर्मा, फतेहाबाद—(बिहार)
१८३. रामकृष्ण मिशन, शिलांग—(मेघालय)
१८४. श्री त्रिभुवन महतो, राँची—(बिहार)
१८५. रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची—(बिहार)
१८६. श्री आर० के० चोपड़ा, इलाहाबाद—(उ० प्र०)
१८७. श्री श्यामनन्दन सिंह, राँची—(बिहार)
१८८. श्री डी० आर० साहू, रायपुर—(म० प्र०)
१८९. रामकृष्ण मिशन स्कूल, नरोत्तमनगर (अरुणाचल प्र०)
१९०. रामकृष्ण मिशन हॉस्पिटल, इटानगर (अरु० प्र०)
१९१. रामकृष्ण मिशन स्कूल, अलाँग (अरु० प्र०)
१९२. श्री घनश्याम चन्द्राकर, औंधी (म० प्र०)
१९३. श्री भास्कर मढ़रिया, भिलाई (म० प्र०)
१९४. स्वामी विरन्तनानन्द, रा.कृ.मि.नरोत्तमनगर (अ.प्र.)
१९५. श्री हरवंश लाल पाहडा, जम्मूतवी (कश्मीर)
१९६. श्री योगेश कुमार जिन्दल, विवेक विहार (दिल्ली)
१९७. डॉ० अखिलेश अग्रवाल—रुड़की, (उ० प्र०)
१९८. श्री अनिल कु० पूनम चन्द जैन—नागपुर (महा०)
१९९. डॉ० शीला जैन—बीकानेर (राजस्थान)
२००. श्री डी० एन० देशमुख—चन्द्रपुर (महाराष्ट्र)
२०१. श्री योगेश कुमार थलिया—नवलगढ़ (राजस्थान)
२०२. रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम—अम्बिकापुर (म.प्र.)
२०३. श्री ओम भक्त बुदाथोकी—डाँग (नेपाल)
२०४. श्री ए० डी० भट्टाचार्य—भद्रकाली (प० बं०)
२०५. हिन्दी विभाग, राजेन्द्र कॉलेज, छपरा
२०६. श्री दीपक कुमार विद्यार्थी—काराधीक्षक, गिरिडी

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की हिन्दी मासिकी

वर्ष—१८ | जून—१९९९ | अंक—६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'।।

सम्पादक :
डा० केदारनाथ लाभ

सहायक सम्पादक :
ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा

सम्पादकीय कार्यालय :
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२१६३९

सहयोग राशि :

आजीवन सदस्य—	७०० रु०
वार्षिक—	५० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	६५ रु०
एक प्रति—	५ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

☐ मधुमक्खी जब तक 'गुन-गुन' करती हुई फूल के चारों ओर मँडराती रहती है, तब तक यह समझना चाहिए कि उसे फूल का मधु नहीं मिला है। अगर एक बार उसे मधु मिल जाए तो फिर उसका गुनगुनाना रुक जाता है और वह शान्त होकर फूल पर बैठ मधुपान करने लगती है। इसी तरह, मनुष्य जब तक धर्म के सिद्धांतों को लेकर तर्क-वितर्क करता रहता है तब तक यही समझना चाहिए कि उसे धर्मामृत का स्वाद नहीं मिला है। एक बार यदि वह उस अमृत का स्वाद चख ले तो फिर वह शान्त हो जाता है।

☐ जिसके द्वारा ईश्वरप्राप्ति हो वही परा विद्या है। दर्शन, न्याय, व्याकरण आदि सारे शास्त्र केवल भारस्वरूप हैं, वे चित्त में भ्रम ही पैदा करते हैं। ग्रन्थ मानो ग्रन्थि (गाँठ) ही हैं! यदि वे ईश्वर का ज्ञान करा दें तभी उनसे लाभ है।

☐ जिस प्रकार कसौटी पर घिसते ही सोना और पीतल का भेद खुल जाता है, उसी प्रकार दुःख-कलेश और विपदाओं में पड़ने पर सच्चे साधु और पाखण्डी का भेद खुल जाता है।

☐ छिछले तालाब का पानी पीना हो तो उसे न खलबलाकर ऊपर से धीरे-धीरे पानी लेना चाहिए। ज्यादा खलबलाने से नीचे का कीचड़ ऊपर आकर सारा पानी गँदला हो जाता है। यदि तुम सच्चिदानन्द का लाभ करना चाहते हो तो गुरु के उपदेश पर विश्वास रखकर धीरज के साथ साधना किए चलो। वृथा शास्त्र-विचार या तर्क-वितर्क में मत पड़ो, नहीं तो तुम्हारी क्षुद्र बुद्धि गड़बड़ा जाएगी।

श्रीरामकृष्ण स्तुति

—श्रीराम कुमार गौड़
वाराणसी

जय जय जयति जय रामकृष्ण अनूपछवि सुखदायकं ।
कल्याणधाम नमामि तव पद सहजशक्तिप्रदायकम् ।
परमपावन बंगभूमि कृतार्थकृत् चरणोदकम् ।
जय मातृभाव अनूप विग्रह कालीकीर्तनगायकम् ।।१।।

कामारपुकुरे जन्म तव कुलदेवता रघुनायकम् ।
अतिपूतबालचरित्र पुरजन मातुपितु सुखदायकम् ।
बाल्यकाले शिल्पगीतकला निपुण सुरनायकम् ।
जय शैवरात्रिसुनाटके शिवभावितं वरदायकम् ।।२।।

कालिकार्चनमग्न तव मन सत्वगुणमयतनु अयं ।
तप्तकांचन वर्ण मुख छवि मातृनामपरायणम् ।
परम व्याकुल हृदयमध्ये मातृमुखछविदर्शनम् ।
नित्यमक्षरपदं लब्ध्वा धन्यकृत निज जीवनम् ।।३।।

अनधीत शास्त्र पुराण गीता तदपि सर्वमुखस्थितम् ।
मातृचरणे दीनबालकमिव समर्पित जीवनम् ।
लोकशिक्षा कारणे कृतमानवीलीला इयम् ।
जय भक्तचित्तानन्ददाता जगन्मातापदप्रियम् ।।४।।

जय भक्त शोकविनाशने अतिदक्ष तन मन कोमलम् ।
हरिनामसंकीर्तनं कृत्वा भक्तचित्तमलाहहम् ।
खलु असारे लोकेऽस्मिन् नित्यपदहृद्दिर्शितम् ।
जय भक्तभवबन्धनं छेत्तु मृदुकथामृतवर्षितम् ।।५।।

अग्नि-वीणा

(भगिनी निवेदिता को लिखित)

६३ सेण्ट जार्जेस रोड, लन्दन
७ जून, १८६६

प्रिय कुमारी नोबल,

मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े से शब्दों में कहा जा सकता है, और वह है—मनुष्य-जाति को उसके दिव्य स्वरूप का उपदेश देना, तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे प्रकट करने का उपाय बताना।

यह संसार कुसंस्कारों की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। जो अत्याचार से दवे हुए हैं, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, मैं उन पर दया करता हूँ, परन्तु अत्याचारियों पर मेरी दया अधिक है।

एक बात जो मैं सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट देखता हूँ वह यह कि अज्ञान ही दुःख का कारण है और कुछ नहीं। जगत को प्रकाश कौन देगा ? भूत काल में बलिदान का नियम था; और दुःख है कि युगों तक ऐसा ही रहेगा। संसार के वीरों को और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है।

संसार के धर्म प्राणहीन और तिरस्कृत हो गये हैं। जगत को जिस वस्तु की आवश्यकता है वह है चरित्र। संसार को ऐसे लोग चाहिए जिनका जीवन स्वार्थहीन ज्वलन्त प्रेम का उदाहरण हो। वह प्रेम एक-एक शब्द को वज्र के समान प्रभावशाली बना देगा।

मेरी दृढ़ धारणा है कि तुममें कुसंस्कार नहीं है। तुममें वह शक्ति विद्यमान है जो संसार को हिला सकती है। धीरे-धीरे और भी अन्य लोग आयेंगे। 'वीर' शब्द और उससे अधिक 'वीर' कर्मों की हमें आवश्यकता है। महामना, उठो ! संसार दुःख से जल रहा है। क्या आप सो सकती हैं ? हम बार-बार पुकारें जब तक सोते हुए देवता न जाग उठें, जब तक अन्तर्यामी देव उस पुकार का उत्तर न दें। जीवन में और क्या है ? इससे महान् कर्म क्या है ? मैं उपाय कभी नहीं सोचता। कार्य-संकल्प का अभ्युदय स्वतः होता है और वह निज बल से ही पुष्ट होता है। मैं केवल कहता हूँ, जागो, जागो !

अनन्तकाल के लिए तुम्हें मेरा आशीर्वाद। इति।

सस्नेह तुम्हारा,
विवेकानन्द

परमार्थ की ओर (२)

—स्वामी यतीश्वरानन्द
अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मठ, चेन्नई

सत्य की शक्ति—

सामान्यतः प्रारम्भ में भगवान् के लिए व्याकुलता होना बहुत कठिन है, क्योंकि भगवान् हमें सत्य प्रतीत नहीं होता। हममें से अधिकांश के लिए यह देह ही हमारी आत्मा है, और इस देह के भौतिक स्तर पर सुख भोग के लिए हम अत्यधिक चिन्तित रहते हैं भले ही वह अत्यन्त स्थूल प्रकार का भोग न भी क्यों न हो।

सत्य की कसौटी यह है: जहाँ सांसारिक वस्तुओं और सांसारिक सम्बन्धों में तुम कभी भी शाश्वत सुख व सन्तोष नहीं पा सकते वहीं, अध्यात्म तथा आध्यात्मिक जीवन में सभी बाह्य वस्तुओं से निरपेक्ष पूर्ण सन्तोष पाया जा सकता है। अत: महान ऋषि नारद कहते हैं : "यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति, तृप्तो भवति।" (नारद भक्ति सूत्र 1.4) अर्थात् उसका (भगवद्-भक्ति) का लाभ कर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है।

जिस व्यक्ति को सचमुच प्यास लगी है, वह पानी अवश्य चाहता है। लेकिन जो प्यासे नहीं हैं, वे पानी के बिना लम्बे समय तक रह सकते हैं। एक सच्चा निष्ठावान साधक सभी प्राप्त निर्देशों का पालन करेगा लेकिन लोग इतने ढीले तथा इतने कम निष्ठावान् होते हैं कि उन्हें दिये गये निर्देशों के पालन की उन्हें कोई व्यग्रता नहीं होती।

और फिर हम शुद्धतम जल चाहते हैं, मिलावट वाला या बुरी तरह से मैला जल नहीं। हममें सच्ची पिपासा होनी चाहिये, लेकिन हमें ऐसी किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करना चाहिये जो शुद्ध और शुभ न हो।

संघर्ष के बिना सत्य का साक्षात्कार नहीं किया जा सकता। निश्चय ही सारा जीवन एक संघर्ष है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ-न-कुछ प्राप्त करने के लिये संघर्षरत है। लेकिन आध्यात्मिक संघर्ष एक उच्चतर कोटि का संघर्ष है। वह चेतना के लिये संघर्ष है। संघर्ष, संघर्ष, संघर्ष ! दूसरा और कोई मार्ग नहीं है। हमें संघर्ष से भयभीत नहीं होना चाहिये।

हममें से अधिकांश के लिये धर्म अत्यधिक शौकिया होता है और अन्य नाना फैशनों की तरह एक फशन होता है। लेकिन यदि हमारे आध्यात्मिक प्रयासों से किसी दिन भगवान् हमें सत्य प्रतीत होने लगें, तो हमें अनुभव होगा कि हमारा समग्र व्यक्तित्व उस सत्ता के प्रति आकृष्ट हो रहा है, तथा एकमात्र उसके लिये ही लालायित है। यदि जगत् हमारे लिये सत्य है, तो वह हमारा पूरा ध्यान खींच लेगा। अगर और कुछ सत्य प्रतीत होगा तो वह भी यही करेगा। जिसे हम सत्य समझते हैं वह उस समय के लिये हमें प्रभावित करता है, हमारी भावनाओं को उद्वेलित करता है, हमारी इच्छा-शक्ति को आकर्षित करता है, हमारी समग्र बुद्धि पर छा जाता है। वस्तुत: हमारी समग्र सत्ता उस सत्य के अनुरूप क्रिया करती है।

यदि हम अपने तथा सन्तों के जीवन का सावधानी से अध्ययन करें, तो हमें एक महान अन्तर दिखाई देगा। दोनों के मन सत्य द्वारा प्रभावित होते हैं, लेकिन सन्त के लिये जो सत्य है, वह हम सामान्य लोगों के लिये सत्य से भिन्न है। हमारे लिये यह जगत् सत्य है, उनके लिये अध्यात्म जगत् ही सत्य है। परमात्मा का साक्षात्कार कैसे करना, भगवान की बौद्धिक अथवा अस्पष्ट धारणा के बदले भगवान की सत्य-प्रतीति कैसे प्राप्त करना; उनका समग्र जीवन इस एक भाव द्वारा परिपूर्ण रहता है। यदि हम सन्तों द्वारा जिसे सत्य कहा जाता है, उसको हृदयंगम कर सकें, तो हम यह भी हृदयंगम कर सकेंगे कि वे ईश्वर साक्षात्कार के लिये अपने जीवन का उत्सर्ग करने के लिये सदा तत्पर क्यों रहते हैं।

लेकिन हमें सन्तों का अन्धानुकरण नहीं करना चाहिये। उनका आचरण कुछ रूढ़िविरुद्ध और अजीब हो सकता है। लेकिन जैसा हमने कहा है, उनकी सारी भगवत् पिपासा सत्य की स्पष्ट धारणा पर आधारित होती है। हममें से जिन लोगों के लिये यह इन्द्रियगम्य जगत ही एकमात्र सत्य है, उन्हें अपने आध्यात्मिक संघर्ष में सावधान होना चाहिये। हमारी सफलता अधिकांशतः हमारी दैनन्दिन साधना की नियमितता और तीव्रता पर निर्भर करती है। प्रायः हम इस विषय में बहुत असावधान होते हैं। सतत अभ्यास के बिना आध्यात्मिक जीवन में कुछ भी हासिल नहीं किया जा सकता। आध्यात्मिक जीवन परमात्मा के प्रति समर्पण का, आत्मोत्सर्ग का, त्याग और एकाग्रनिष्ठा का जीवन होना चाहिये। अतः हमें अपने कल्याण के लिये तथा उन दूसरों के कल्याण के लिये अपने विचारों के विषय में अधिक सतर्क और सजग होना चाहिये जिनके लिये हमारे काम, लोभ और क्रोध के विचार विषाक्त गैस से भी अधिक हानिकारक हो सकते हैं। वस्तुतः अपने अपवित्र विचारों से हम जो विनाश करते हैं, वह विषाक्त गैस द्वारा किये गये विनाश से अधिक बुरा है। अपने अपवित्र विचारों से हम ऐसे लोगों को प्रभावित करते हैं, जो अपवित्रता जानते ही नहीं। लेकिन अपने पवित्र विचारों से हम दूसरों को पवित्रता के उनके प्रयासों में मदद करते हैं।

दिव्य-असन्तोष—

हमें तीव्र दिव्य असन्तोष पैदा करना चाहिये, जिसके बारे में सभी काल के योगी साधक चर्चा करते आये हैं। जब तक हम अपनी आत्मा में सभी सांसारिक-आसक्तियों और वासनाओं के नाशक इस दिव्य असन्तोष का उदय नहीं करते, तब तक आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिये हममें सच्ची व्याकुलता नहीं हो सकती। संसार में कभी भी वास्तविक शान्ति नहीं हो सकती, पर हमें अपनी भूमिका यथासम्भव अच्छी तरह निभानी चाहिये। हमारे प्रयासों में किसी प्रकार की ढील तथा हमारी बद्ध-अवस्था के प्रति किसी प्रकार के सन्तोष का भाव कभी नहीं होना चाहिये। इस प्रकार का सन्तोष सभी साधकों के लिये बहुत हानिकारक है। हमें सचेतन रूप से उच्च जीवन के प्रति लालसा और व्याकुलता की अग्नि प्रज्ज्वलित किये रखना चाहिये। हमें अपनी शक्तियों को किसी निम्न उद्देश्य के लिये कभी व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। आध्यात्मिक उपलब्धि के लिये छटपटाहट की तुलना में अकर्मण्यता की शान्ति कभी पसन्द नहीं करनी चाहिये।

चरम लक्ष्य की ओर काफी दूर तक अग्रसर हुए बिना कोई सुरक्षा नहीं हो सकती। आत्म-साक्षात्कार के पूर्व तक किसी भी भक्त को कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है, अथवा किसी भी क्षण उसका गर्हित पतन हो सकता है। अतः हमें पर्याप्त प्रगति कर लेने तक

अपनी शक्ति पर भरोसा करके बहुत अधिक खतरा मोल नहीं लेना चाहिये।

साधना और प्रार्थना में तीव्रता लानी चाहिये। रात-दिन सतत् प्रार्थना, सतत् ध्यान और निरन्तर उच्चतर विचारों के चिन्तन से हमें बहुत लाभ होगा। प्रारंभिक साधक के मन को भगवद्-विचारों में निरंतर लगाये रखना चाहिये जिससे इसकी आदत बन जाये। शुभ उपयुक्त आदत पड़ जाने के बाद पथ आसान हो जाता है और साधक के जीवन में अधिक तनाव पैदा नहीं होता।

हमें मन का एक अंश ही नहीं बल्कि समग्र मन भगवान् में लगाना चाहिये। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, "यदि मुझे एक रुपये के मूल्य का कपड़ा खरीदना है तो मुझे एक रुपया देना पड़ेगा, एक पैसा भी कम नहीं। कम देने से कपड़ा नहीं मिलेगा।" आध्यामिक जीवन में भी यही बात है। अगर तुम पूरा मनोयोग न दो; तो तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा। यदि लापरवाही से कुछ महीने अथवा कुछ वर्षों तक ध्यान का अभ्यास करने के बाद तुम्हें कोई आध्यात्मिक लाभ न हो तो और कोई इसके लिए दोषी नहीं है।

हमें अध्यवसाय की आवश्यकता है। दृढ़ता-पूर्वक निरंतर साधना करनी चाहिये। देह और मन को पवित्र बनाये रखने के लिये संघर्ष में हार मानने के बदले मर जाना श्रेयष्कर है। यदि हम मर भी जायें तो क्या ? महत्वपूर्ण बात यह है कि हम सत्य का साक्षात्कार करें, अपने वास्तविक स्वरूप का पूर्ण विकास करें। यदि हम अपना पूरा प्रयास कर सकें, पूरा संघर्ष कर सकें तो समझो कि हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया है। इसके बाद बाकी काम परमात्मा पर छोड़ देना चाहिये। यहाँ सच्ची भगवद् शरणागति और आत्म-समर्पण की उपयोगिता स्पष्ट है। कठोपनिषद् में कहा गया है :

विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥
(कठोपनिषद् । ३:९)

अर्थात् बुद्धि जिसका सारथी है तथा जिसके पास संयत मन रूपी लगाम है, वह मार्ग के अन्त को, विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है। हमें यह सोचकर कभी भी सन्तोष नहीं कर लेना चाहिए अथवा निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिए कि हमने अपना पूरा प्रयास किया है। यह इस समय के लिये हमारा सर्वोत्तम प्रयास हो सकता है लेकिन हमें परमात्मा से अधिकाधिक शक्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिये, जिससे हम और अधिक प्रयास कर सकें। आज मैं केवल दस किलो उठा सकता हूँ, लेकिन मैं सौ किलो उठाने की शक्ति के लिये प्रार्थना कर सकता हूँ। यह मानते हुए भी कि मैं अपना सर्वोत्तम प्रयास कर चुका हूँ और कर रहा हूँ मेरी क्षमता बढ़ाई जा सकती है क्योंकि इस सर्वोत्तम की कोई निश्चित मात्रा नहीं है।

सन्तों का दृष्टान्त—

हमें भगवान् के लिये तीव्र व्याकुलता, सन्तों और ऋषियों के जीवन में पायी जानी वाली अनवरत और अटल भगवत् पिपासा की वृद्धि का प्रयत्न करना चाहिये। श्री चैतन्य यौवन में एक महान पण्डित थे। लेकिन युवावस्था में उनमें अचानक एक परिवर्त्तन उपस्थित हुआ और वे भगवान् के अनन्य भक्त बन गये। उनका भगवत्प्रेम इतना तीव्र था कि वे एक क्षण के लिए भी उन्हें भूल नहीं सकते थे। उनका समग्र जीवन आध्यात्मिक उन्माद में व्यतीत हुआ। उनका प्रेमोन्माद उनकी रचित एक छोटी-सी कविता में व्यक्त हुआ है, जिसमें वे कहते हैं :

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति॥

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्राविषायितम् ।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे ।।
आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु माम्
अदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा विदधातु लम्पटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ।।
(श्रीचैतन्यकृत शिक्षाष्टकम् ६, ७, ८)

अर्थात् वह दिन कब होगा जब तुम्हारा नाम लेते ही मेरे नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगेगी, कण्ठ गद्गद् हो जायेगा, और शरीर में रोमांच होने लगेगा ?

वह दिन कब होगा, जब गोविन्द का क्षण भर का विरह मुझे युग सम प्रतीत होगा, प्रभु के विरह में मेरे नेत्रों से अश्रु-वृष्टि होने लगेगी, तथा जगत् शून्य प्रतीत होगा । भगवान् के चरणों में रत मेरा वे आलिंगन करें या चरणों से आघात करें, अथवा अदर्शन द्वारा मुझे मर्माहत करें, भक्त-चित्तचोर वे मुझसे कैसा भी व्यवहार क्यों न करें, मेरे प्राणनाथ तो एकमात्र वे ही हैं।

प्रह्लाद पुराण-प्रसिद्ध सन्तों के दृष्टान्त हैं। बाल्यकाल से ही उनमें भगवान् विष्णु के प्रति तीव्र भक्ति थी। उसके असुरपिता ने पुत्र को सांसारिक पथ पर लाने के सभी प्रयास किये। लेकिन उस छोटे से बालक ने उन सभी निष्ठुर अत्याचारों का वीरता से सामना किया और वह भगवान् की भावपूर्ण-स्तुतियाँ करता रहा। जब भगवान ने उसके सामने आविर्भूत होकर उससे वर माँगने को कहा, तो उसने कहा :

या प्रीतीरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापसर्पतु ।।

अर्थात् विषयों में अविवेकी लोगों की जैसी दृढ़ प्रीति होती मैं वैसी ही प्रीति सहित तुम्हारा स्मरण करूँ और वह प्रेम मेरे हृदय से कभी दूर न हो ।

नाथ, योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेषु स्चलाभक्तिः सदा मेस्यात्त्वीश्वरे ।।

हे प्रभु मुझे सहस्रों बार जन्म लेना पड़े तो भी मेरी तुम में अटूट भक्ति सदा बनी रहे ।

आधुनिक काल में भगवान् के प्रति तीव्र व्याकुलता में श्रीरामकृष्ण का दृष्टान्त अद्वितीय है। भगवान् के सभी रूपों के दर्शनों की उनकी व्याकुलता इतनी तीव्र थी कि वे छः वर्षों तक नहीं सोये। वे दिन-रात विभिन्न आध्यात्मिक भावों में विभोर रहा करते थे जो इतने तीव्र थे कि लोग उन्हें पागल समझते थे। सचमुच उन्हें दिव्योन्माद हो गया था। 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' नामक उनके वार्तालापों और उपदेशों के संकलन में भगवान् के लिये व्याकुलता पर बहुत बल दिया गया है। वस्तुतः हम यह कह सकते हैं कि सभी साधकों के लिये श्रीरामकृष्ण ने इसी एक मुख्य साधन का उपदेश दिया है। निम्नांश उसी का एक उदाहरण है :

श्रीरामकृष्ण (बंकिम आदि से) "परन्तु बालक जिस प्रकार माँ को न देखने से बेचैन हो जाता है, लड्डू-मिठाई हाथ पर लेकर चाहे भुलाने की चेष्टा करें। परन्तु वह कुछ भी नहीं चाहता, किसी से नहीं भूलता और कहता है, 'नहीं', मैं माँ के ही पास जाऊँगा' इसी प्रकार ईश्वर के लिये व्याकुलता चाहिये। अहा! कैसी स्थिति! —बालक जिस प्रकार 'माँ-माँ', कहकर पागल हो जाता है, किसी भी तरह नहीं भूलता! जिसे संसार के ये सब सुख भोग फीके लगते हैं, जिसे अन्य कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वही हृदय से "माँ-माँ" कहकर कातर होता है। उसी के लिये

माँ को फिर सभी काम-काज छोड़कर दौड़ आना पड़ता है।

"यही व्याकुलता है। किसी भी पथ से क्यों न जाओ, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, शाक्त ब्रह्म— किसी पथ से जाओ, यह व्याकुलता ही असली बात है। वे तो अन्तर्यामी हैं, यदि भूल पथ से भी चले गये तो भी दोष नहीं है—पर व्याकुलता रहे। वे ही ठीक पथ पर उठा देते हैं।

"फिर सभी पथों में भूल है—सभी समझते हैं, मेरी घड़ी ठीक जा रही है, पर किसी की घड़ी ठीक नहीं चलती। तिस पर भी किसी का काम बन्द नहीं रहता। व्याकुलता हो तो साधुसंग मिल जाता है, साधुसंग से अपनी घड़ी कुछ मिला ली जा सकती है।

(श्रीरामकृष्ण वचनामृत,
द्वितीय भाग, नवम संस्करण १९९२,
रामकृष्ण मठ, नागपुर पृ० ५९५-५९६)

बंकिम— श्रीरामकृष्ण के प्रति)—"महाराज भक्ति का क्या उपाय है ?"

श्रीरामकृष्ण—"व्याकुलता। लड़का जिस प्रकार माँ के लिए, माँ को न देखकर बेचैन होकर रोता है, उसी प्रकार व्याकुल होकर ईश्वर के लिये रोने से ईश्वर को प्राप्त किया जाता है।

अरुणोदय होने पर पूर्व दिशा लाल हो जाती है, उसी समय समझा जाता है कि सूर्योदय में अब अधिक विलम्ब नहीं है। उसी प्रकार यदि किसी का प्राण ईश्वर के लिये व्याकुल देखा जाय, तो भली-भाँति समझा जा सकता है कि इस व्यक्ति का ईश्वर प्राप्ति में अधिक विलम्ब नहीं है। (श्रीरामकृष्ण वचनामृत-वही, पृ० ५९७-५९८)।

श्रीरामकृष्ण के सभी अन्तरंग शिष्यों में भगवान् के प्रति यह ज्वलन्त अनुराग था। बलराम उनमें से एक थे। उनकी श्री रामकृष्ण से प्रथम भेंट से हमें बहुत जानने को मिलता है।

कलकत्ता पहुँचने के दूसरे दिन वे दक्षिणेश्वर के लिये रवाना हुए। केशवचन्द्र सेन और उनके बाह्य अनुयायियों की उपस्थिति के कारण मन्दिर-प्रांगण में बहुत भीड़ थी। बलराम एक कोने में बैठे रहे और जब लोग भोजन के लिये चले गये, तो श्रीरामकृष्ण ने बलराम को अपने पास बुलाया और पूछा कि क्या वे कुछ पूछना चाहते हैं ?" बलराम ने पूछा : महाशय, क्या ईश्वर सचमुच हैं ?" "अवश्य !" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया। "क्या उनका दर्शन हो सकता है ?" "हाँ" श्रीरामकृष्ण ने कहा, जो भक्त उन्हें अपना निकटतम और प्रियतम समझता है, उसे वे दर्शन देते हैं। एक बार पुकारने से तुम्हें कोई उत्तर नहीं मिलता, इससे यह मत समझो वे हैं ही नहीं।' बलराम ने पुन: पूछा, "लेकिन, इतना पुकारने पर भी मैं उनका दर्शन क्यों नहीं कर पाता हूँ ?" श्रीरामकृष्ण ने मुस्कुराते हुए पूछा, "अपनी सन्तानों को जैसे तुम अपना समझते हो, क्या तुम सचमुच भगवान् को भी वैसे ही अपना समझते हो ?" 'नहीं महाशय", बलराम ने कुछ क्षण रुक कर उत्तर दिया, "मैंने कभी उन्हें अपना इतना निकट आत्मीय नहीं समझा।" श्रीरामकृष्ण ने जोर देकर कहा, "भगवान् को अपनी आत्मा से भी अधिक प्रिय समझकर उनसे प्रार्थना करो। मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि उनका अपने भक्तों से बहुत लगाव है। वे अपने को प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। वे मनुष्य के पास खोजने के पहले ही आ जाते हैं। भगवान् से अधिक आत्मीय और स्नेह करने वाला और कोई नहीं है।" बलराम को इन शब्दों से नया आलोक प्राप्त हुआ। उन्होंने मन-ही मन सोचा, "इनका प्रत्येक शब्द सत्य है। आज तक किसी ने भी मुझसे भगवान् के बारे में इतनी दृढ़ता

से नहीं कहा।" (लाईफ आफ श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम, कलकत्ता, १९६४, पृ० ३७१)।

साधना का प्रारंभ जल्दी करो—

ऐसे बहुत से लोग हैं, जो सोचते हैं कि वे संसार के सभी फल भोग करने के बाद वृद्धावस्था में धर्म का आचरण करेंगे। लेकिन धर्माचरण के लिये उन्हें कभी भी समय नहीं मिलता क्योंकि अपनी शक्ति का अधिकांश भौतिक सुखों में क्षय करने के बाद कठोर साधना के लिये अधिक शक्ति नहीं बचती। बहुत से लोग आध्यात्मिक जीवन का प्रारंभ इतनी देर से करते हैं कि उससे उन्हें अधिक लाभ नहीं होता। बहुत से लोगों को बहुत देर से अनुभव होता है कि उनका जीवन व्यर्थ गया। लेकिन वे उस बूढ़े मूर्ख से बेहतर हैं, जो स्वयं को रंगीला युवक समझकर वृद्धावस्था में भी सांसारिक भोगों की ओर दौड़ता रहता है। पाश्चात्य देशों में ऐसे बहुत से हतभागे लोग मिलते हैं।

आध्यात्मिक जीवन का प्रारभ जितनी जल्दी हो सके करना चाहिये। आध्यात्मिकता के बीज को जीवन के प्रारंभ में बोये बिना बाद में आध्यात्मिक मनोभाव बनाना संभव नहीं है। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन अपने प्रिय युवा शिष्य नरेन्द्र को बंगाल के प्रसिद्ध नाटककार-अभिनेता गिरीशचन्द्र घोष का संग करने से सावधान करते हुए कहा :

श्रीरामकृष्ण : "क्या तू गिरीश के यहाँ बहुत जाया करता है? परन्तु लहसुन के कटोरे को चाहे जितना धोओ कुछ न कुछ बू तो रहेगी ही। लड़के शुद्ध आधार हैं, कामिनी और कांचन का स्पर्श अभी उन्होंने नहीं किया; बहुत दिनों तक कामिनी और कांचन का उपभोग करने पर लहसुन की तरह बू आने लगती है। जैसे कौए का काटा हुआ आम। देवता पर ही चढ़ नहीं सकता, अपने खाने में भी सन्देह है। जैसे नयी हण्डी और दही जमायी हण्डी-दही जमायी हण्डी में दूध रखते हुए डर लगता है। अक्सर दूध खराब हो जाता है।" (श्रीरामकृष्ण वचनामृत तृतीय भाग, नवम संस्करण, १९९२, पृ० ३४, रामकृष्ण मठ, नागपुर)।

बाद में गिरीश ने यह बात सुनी और श्रीरामकृष्ण से पूछा कि क्या लहसुन की गन्ध दूर होगी। श्रीरामकृष्ण ने कहा कि कटोरे को धधकती आग में गरम करने पर गन्ध चली जायेगी। अपनी सहजात प्रवृत्तियों का गुलाम होने के बाद उनके चंगुल से अपने को मुक्त करना व्यक्ति के लिये बहुत कठिन होता है। इन सहजात प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने के लिये वृद्धावस्था का समय बहुत कम होता है। यदि अतिचेतन अनुभूति प्राप्त कर बन्धन और दुःख से मुक्त होना तुम्हारा लक्ष्य है, तो अभी प्रारम्भ करना ही श्रेयस्कर है।

और यदि कोई लक्ष्य प्राप्त किये विना मर जाय? गीता के इस अंश को याद करो: "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।" (भगवद् गीता, २:४०) अर्थात् इस धर्म का थोड़ा-सा आचरण भी महान् भय से रक्षा करता है। जिन लोगों ने आध्यात्मिक जीवन में ईमानदारी से संघर्ष किया है, जिन्होंने अपना सर्वस्व परमात्मा को समर्पित किया है, उन्हें कोई भय नहीं है। जीवित रहते हुए यदि उन्होंने तीव्र आध्यात्मिक जीवन-यापन किया है, तो वे अपने आध्यात्मिक प्रयास को जीवन के अन्य स्तर पर अन्य लोकों में भी बनाये रख सकते हैं। तब व्यक्ति उसी स्थान से अपनी साधना प्रारंभ करता है, जहाँ उसने उसे छोड़ा था। मृत्यु से केवल परिवेश का परिवर्त्तन

होता है, लेकिन चेतना का हमारा केन्द्र, अर्थात् परमात्मा, सदा हमारे भीतर ही है। हम जहाँ भी हों अनन्त परमात्मा सदा हमारे साथ है। इस भाव को अंगीकार करने पर मृत्यु का भय नहीं रहता। हमें न तो जीवन की अभिलाषा करनी चाहिये, ओर न ही मृत्यु की। नियति अपनी चाल चलती रहे, लेकिन हमारा मन सदा परमात्मा में लगा रहे। हम निर्भय और दृढ़तापूर्वक लक्ष्य की ओर बढ़ते रहें।

आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्तचिन्तया।

निद्रापर्यन्त, मृत्यु पर्यन्त वेदान्त चिन्तन में अपना काल व्यतीत करो।

□

संरक्षक-सूची

संरक्षक का नाम	स्थान	रुपये
१. श्रीमती कमला घोष	इलाहाबाद	३,६६०/-
२. श्री नन्द लाल टांटिया	कलकत्ता	१,०००/-
३. श्री हरवंश लाल पाहड़ा	जम्मूतवी	१,०००/-
४. श्रीमती निभा कौल	कलकत्ता	१,०००/-

जननी सारदा देवी (४)

—स्वामी गौरीश्वरानन्द
अनुवादक—अरुणदेव भट्टाचार्य

बहुत सारी घटनाएँ याद आती हैं। बहुत सारे लोग मां के पास उनकी कृपा पाने के लिए आया करते थे। एकबार चार महिलाएँ बैलगाड़ी से घाटाल की तरफ से आयी थीं। मैंने उनसे मिलकर पूछा था कि वे क्या केवल मां का दर्शन करने के लिए आयी हैं और दीक्षा की तो बात नहीं हैं न! इस प्रश्न के पीछे एक कारण था। मां को तीन दिनों से बुखार था। उस समय उस जगह पर बहुत ज्यादा मलेरिया होता था। हमलोगों को भी बुखार आता था, मां को भी। उनकी इच्छा दीक्षा की है जानकर मैंने उनको समझाया था कि मां से दीक्षा लेने के लिए उनको तीन चार दिन ठहरना पड़ेगा। मां दवाई ले रही हैं, तीन चार दिनों में ठीक होने की आशा है। नहीं तो इसबार प्रणाम करके चली जायें। अगली बार चिट्ठी लिखकर जानकर आइयेगा कि मां स्वस्थ हैं या नहीं? इतना सिखा-पढ़ाकर मां के पास ले जाने पर वे मां से बोल बैठीं, "हमारा भाग्य कितना खराब है। हम आयी थीं कृपा के लिए। मैं तब था मां के सेवक-विद्यालय में पढ़नेवाला छात्र।" अवश्य ही उस समय मैं मां की कृपा प्राप्त कर चुका था। मेरे सामने मां सविनय बोलती हैं, "बेटा! पुरुषों की बात कुछ अलग ही है। महिलाएँ इतने काम में व्यस्त रहती हैं कि उनके लिए घर से निकलना कठिन है। तो बेटा! मैं स्नान नहीं करुँगी, थोड़ा गंगाजल छिड़ककर आसन में बैठकर भगवान् का नाम सुना देना ही तो है।" यह विनय इस कारण थी कि मैंने दीक्षा के लिए मना किया था मां के शरीर के अस्वस्थ होने के कारण। मैं मना न कर सकूँ इस कारण एक विद्यालय के छात्र के सामने मां इस प्रकार बोली थीं। उसके बाद एक-एक करके चार महिलाओं को दीक्षा देने के बाद मां पुनः लेट गयी थीं। तब उन्होंने साबूदाना का पानी थोड़ा पिया था। नींबू देकर साबूदाना का पानी पीने में अच्छा लगता है। इस कारण दूर के हाट-बाजार से हम नींबू खरीदकर लाते थे। यह हाट बाजार हफ्ते के दो दिन विशेष-विशेष इलाके में बैठता था। मैं वहाँ से खरीदकर लाता था। देखिए जननी मां को जो यहाँ तक कि सन्तान के लिए अस्वस्थ होते हुए भी कृपा वर्षण करती हैं।

इस नींबू के बारे में बेलुड़ की एक घटना याद आती है। खोका महाराज (स्वामी सुबोधानन्द) ठाकुर की सन्तान, मुझसे अत्यधिक स्नेह रखते थे। सम्भवतः मां स्नेह करती थीं, इसी कारण से। उसी कारण से शरत् महाराज, महापुरुष महाराज भी स्नेह करते थे। एकदिन उनके सामने से जाते समय वे मुझको बुलाकर कहते हैं, "ओ राममय! तुम नींबू का कलम बाँधना जानते हो।" मेरे, 'नहीं' के उत्तर में वे बोले थे, "मैं तुमको सिखा दूँगा। तुम्हारे पास एक चाकू है क्या?" मेरे "जी, है" कहने पर वे बोले थे, "वहाँ से वह टोकरा लो और थोड़ा नारियल की जटा चीर कर रगड़ कर साफ कर लो। वहाँ एक हंडिया में माटी, गोबर घोल भिगोकर आटे के गोले बनाए पड़े हैं उनको भी ले आओ।" पुनः बोले थे, "थोड़ी रस्सी ले लेना।" उसके बाद उन्होंने मुझको सिखा दिया कि पेड़ में कहाँ गाँठ है, आँख है। उसके बाद एक गाँठ के नीचे, ऊपर छाल उतार दी।

दूसरे के ऊपर की छाल उतार दी। उसपर वह आटे का गोला जैसा ढेला जो बना था उसे अच्छी तरह से लगाया। उसके ऊपर नारियल की जटा लगाकर गाँठ को ढँककर रस्सी से अच्छी तरह से बाँधकर दिखा दिया कि किस प्रकार करना है। मैंने उनसे कहा था, "आप अब जाइये, कितने ऐसे बाँधने हैं, मुझको कह दीजिए।" वे बोले थे, "बीस कलम बाँधना। जो पुराने पेड़ हो गये हैं, वहाँ यह सब कलम लगा दूँगा।" इस प्रकार कलम बाँधना मैंने उन्हीं से सीखा था। जयरामबाटी में नींबू का पेड़ लगाने के लिए मेरे घर पर जो नींबू का पेड़ था उसमें जुलाई के महीने में कलम बाँध दिया था। सितम्बर तक उसमें जड़ निकल आयी थी। मैंने जब उसको काटा था तब जड़ निकली थी और आठ छोटे-छोटे नींबू भी लग गये थे। कलम बनाकर, माँ के चरण के पास रखकर प्रणाम करते ही, ज्योंही माँ ने देखा कि उसमें नींबू लग गया है महिलाओं को बुलाकर माँ बोली थीं, "राममय एक कलम बनाकर लाया है, बेटे की करामात देखो उसमें अभी फल लग गया है।" असल में बात यह थी कि कलम बाँधते समय ही उस डाली में फूल लगा हुआ था जो काटते समय फल हो गया था। माँ यह सबको बुलाकर दिखा रही थी। यह परम आश्चर्य की बात कि माँ एक तरफ कठिन आध्यात्मिक प्रश्नों का जवाब दे रही हैं, दूसरी तरफ लालटेन साफ करने में असमर्थ हैं क्योंकि उसमें बहुत कारीगरी है। ऐसी थी जननी माँ। माँ के समय महिलाएँ अधिक पढ़ने-लिखने की सुविधा नहीं पाती थीं। माँ भी नहीं पायी थीं। बोलती थीं, उस घर में एक लड़की आई है कलकत्ते से जो घड़ी में चाबी भरना जानती है। स्वयं बिना औपचारिक शिक्षा के कठिन कठिन आध्यात्मिक प्रश्नों का सहज-सरल शब्दों में उत्तर दे रही हैं। यह बहुत ही आश्चर्यजनक घटना है।

उनकी बातें हर समय समझ में आती नहीं थी। एक शरत् महाराज की बात समझ में आयी नहीं थी। वे बोले थे, "आज तुम मुझसे दीक्षा माँग रहे हो, कल तुम मुझको दीक्षा दोगे।" यह बात बहुत ही आश्चर्यपूर्ण है। माँ उस समय उद्‌बोधन में थीं। एक लड़का जिसने कभी माँ को देखा नहीं था, उसने माँ के चरण स्पर्श करके माँ से दीक्षा की प्रार्थना की थी। माँ बोली थीं, "मुझसे माँगने पर ही मैं दे देती हूँ। ठीक है, कल तुम्हारी दीक्षा होगी।" शरत् महाराज को सब पता लग गया था। दीक्षा प्राप्त करने के बाद जब वह शरत् महाराज को प्रणाम करने गया, शरत् महाराज बोलते हैं, "देखो! तुम बहुत दिनों से दीक्षा के लिए मुझको तंग कर रहे हो। पंजिका लाओ, तुम्हारी दीक्षा का एक दिन ठीक कर दूँ।" उस लड़के को चुप खड़ा देखकर महाराज ने पुनः वही आदेश दिया। तब भी लड़का चुप खड़ा था। शरत् महाराज तब बोलते हैं, "देखो! क्यों मैंने तुमसे कहा था – "आज तुम मुझसे दीक्षा माँग रहे हो, कल मुझको दीक्षा देना चाहोगे।" मेरे से भी कितने बड़े सब हैं। देखा तुमने जिनसे तुमको कृपा प्राप्त हुई।" एक बार मैंने देखा था कि माँ मेरी उमर के एक लड़के को दीक्षा के लिए बार-बार 'नहीं' कहकर कहती हैं कि दीक्षा राखाल से लो। उसके बहुत रोने पर भी दीक्षा नहीं दी। लगता है उसको देखते ही माँ जान गयी थी कि राखाल के साथ उसका गुरु-शिष्य सम्बन्ध पहले से ही तय हुआ रखा है। उस लड़के को महाराज से कृपा मिली थी अथवा नहीं मुझको पता नहीं है। परन्तु मैं देखता था कि किसी किसी को माँ दीक्षा देने से इनकार कर देती थीं। आप लोगों ने पुस्तकों में अवश्य पढ़ा हैं कि एक 'बागदी' लड़का आया था माँ के पास। दीक्षा प्रार्थना करने पर माँ सम्मत नहीं हो रही थीं परन्तु उसने जब अपना परिचय दिया कि वे उस बागदी पितामह की सन्तान हैं

जिन्होंने माँ की विपदकाल में रक्षा की थी। तब माँ ने उसको दीक्षा दी थी। इस तरह से कुछ अल्पजनों को छोड़कर माँ ने सब पर कृपा की वृष्टि की थी। ऐसी आश्चर्यजनक थी जननी माँ।

और एक घटना सुनिए। क्या अपार स्नेह था माँ का इस स्कूल जाते हुए बालक पर। उस समय बहुत सारे साधु हुए थे जो पहले स्वदेशी आन्दोलन से युक्त थे। बाद में सब त्याग कर साधु हो गये थे। परन्तु अंग्रेज सरकार समझती थी कि वे दिन में गेरुआ पहनकर साधु बने रहते हैं और रात को स्वदेशी करते हैं। उनका सन्देह, रामकृष्ण मिशन पर था। इस कारण आश्रम में आने पर उनका नाम पता एक खाता में लिखना होता था और पुलिस के पहरेदार आकर उसको लिखकर ले जाते थे। लिखित विवरण उस थाने को भेज देते थे जहाँ से मेहमान आया था। मैं हर हफ्ता शनिवार को जयरामबाटी जाता था और मुझको भी नाम पता खाते में लिखना पड़ता था जिसकी रपट मेरे घर के थाने में पहुँच जाती थी। थाने से एक सिपाही आता था मुझको दरोगा के पास थाने में ले जाने के लिए। वह सिपाही हर बार मुझको डराने का प्रयत्न करता था यह कहकर कि "तुम राजनैतिक सन्देहयुक्त हो और तुमको जेल में बन्द कर दिया जायेगा। तुम ऐसा काम करना छोड़ दो।" मैं उसको बतलाता था कि तुमको समझ में नहीं आयेगा। मैं तुम्हारे दरोगा को ही समझाऊँगा। वहाँ थाने में पहुँचते ही दरोगा बोलते हैं, "तुम इतने बच्चे हो, राजनीति क्यों करते हो?" मैं उनको बताता रहा हूँ, "नहीं महाशय। मैं राजनीति नहीं करता हूँ। मैं अखबार तक नहीं पढ़ता हूँ।" जिस दिन से मैंने वचनामृत में पढ़ा कि "ठाकुर प्रसाद मित्र को बोलते हैं— अखबार थोड़ा हटाओ। गगा जल छिड़को क्योंकि उसमें बहुत सारी झूठी बातें लिखी रहती है।" मैंने अखबार पढ़ना छोड़ दिया है।" आज करीब तिरसठ साल (६३ साल) हुए अखबार छुआ तक नहीं हूँ। इस तरह से मैं उनको बताता था कि मैं अखबार तक नहीं पढ़ता हूँ, राजनीति क्या करूँगा। वे समझाते थे मुझको, "तुम बी॰ ए॰ पास करके उसके बाद राजनीति करना।" मैं उत्तर देता था, "मैं वहाँ जाता हूँ गुरु सेवा करने। वे महिला हैं, लिखाई पढ़ाई जानती नहीं हैं। वे यह सब राजनीति नहीं करती है।" इस तरह हर बार मैं बोलता था और वे हमें छोड़ देते थे। एक बार ऐसा हुआ कि मैं शनिवार को वहाँ गया था और रविवार को रह गया था। ऐसा तो हर बार करता था और सोमवार को सीधे विद्यालय पहुँच जाता था। इस प्रकार उस बार सोमवार को विद्यालय आकर बुधवार अथवा बृहस्पतिवार को विद्यालय में छुट्टी रहने के कारण पुनः जयरामबाटी चला गया था। उसी समय थाने में रपट पहुँचने के कारण सिपाही के मेरे घर पहुँचने पर उसको बताया गया था कि मैं जयरामबाटी गया हूँ। सिपाही ने सोचा कि दरोगा को यह बात बोलने से वे नाराज होंगे। अत वह मुझको ढूँढ़ने के लिए जयरामबाटी पहुँच गया था। परन्तु वह जब आया था तब मैं पुनः विद्यालय में लौट चुका था। ज्योंही माँ को पता लगा था कि मेरे लिए पुलिस आयी थी, माँ रो पड़ी थी। बोलती हैं, "मेरा शान्त सुबोध लड़का किसी का अनिष्ट नहीं करता है पुलिस क्यों उसके पीछे-पीछे घूम रही है।" मेरे लिए सिंहवाहिनी के पास मनौती की है कि ठीकठाक मेरा बेटा आने पर पूजा चढ़ाऊँगी। जब मैं अगले शनिवार को वहाँ पहुँचा था, माँ मुझको देखर अतिप्रसन्न हुई।— मुझको पाकर जैसे खोया हुआ रत्न पायी हैं। इतना प्रसन्न हुई थीं कि सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने पूछा था, "तुमको पकड़ने के लिए पुलिस क्यों आयी थी? तुमने किया क्या है?" मैंने कहा था, "वह सिपाही

यहाँ भी आया था? माँ! ऐसे तो हर हफ्ता मुझको थाने में जाना पड़ता है—वह तो मेरी ससुराल जैसा हो गया है।" इसके बाद माँ मुझको लेकर सिंहवाहिनी की पूजा चढ़ायी, मुझको चरणामृत ग्रहण करवायी। मेरे विद्यालय के प्रधान शिक्षक महोदय ने जब इस कारण से माँ के रोने की बात सुनी, तब मुझसे कहा था, "तुम अब से अपना घर का पता मत देना। लिखना छात्र कक्षा आठ वदनगंज हाई स्कूल—इस प्रकार पता लिखना।" रपट पुनः आया था—अब वदनगंज थाने में जहाँ दरोगा थे हरिवाबू। आजकल दरोगा तो पढ़े लिखे होते हैं उस समय सब होते थे जो दसवीं कक्षा पास भी नहीं। हरिवाबू मेरे प्रधान शिक्षक महोदय को काफी श्रद्धा करते थे। अंग्रेजी चिट्ठी का जवाब हरिवाबू शिक्षक महोदय से ही लिखवाकर ले जाते थे। मेरी रपट आने पर हरिवाबू प्रधान शिक्षक महोदय के पास गये थे यह बोलने कि उनके स्कूल का एक छात्र रामकृष्ण मिशन जाता है। शिक्षक महोदय ने उनको कह दिया, "मैं जानता हूँ, वह मेरे विद्यालय का श्रेष्ठ छात्र है। सच्चरित्र है। पढ़ने लिखने में बहुत ही अच्छा है। इस प्रकार जवाब दिया।" शिक्षक महोदय ने लिख भी दिया था जवाब—"वह राजनीति करता नहीं है। गुरु सेवा करने के लिए जाता है। वे प्रधान शिक्षक के भी गुरु हैं। वे महिला हैं—राजनीति नहीं करती है।" हरिवाबू तब से रपट आने पर हर बार वैसा ही लिख देते थे। मैंने जब माँ को यह सूचना दी तो माँ अति प्रसन्न हुई थीं। मैंने माँ से जब कहा कि शिक्षक महोदय की बात दारोगा लिखकर भेज देते हैं और मुझको और थाने में जाना नहीं होता है—माँ अत्यन्त आनन्दित हुई थीं। ऐसी थी जननी माँ।

माँ की बातें आपने अभी सुनीं। माँ कल्याण-मयी हैं, सबका कल्याण कर रही हैं। मैं माँ से सब भक्तों के लिए प्रार्थना करता हूँ कि वे सबको अच्छा रखें। सबका कल्याण करें। इतने सारे भक्तों को एकसाथ देखकर मैं भी खूब आनन्दित हूँ। दिन-दिन उनके भक्तों की संख्या में कितनी वृद्धि हो रही है! ठाकुर, माँ, स्वामीजी के नाम पर सब मुग्ध हो जा रहे हैं। माँ से पुनः प्रार्थना करता हूँ कि वे सबका कल्याण करें।

श्रीमाँ सारदा-सन्देश-सुधा

- यदि तुम नियमित रूप से उनकी (श्रीरामकृष्ण की) छवि के सम्मुख उनसे प्रार्थना करो तो वे स्वयं उस छवि से प्रकट हो जाएँगे। जिस स्थान पर उनका चित्र रखा जाता है, वह मंदिर हो जाता है।
- विवेक-वुद्धि हमेशा जाग्रत् रखो। यह समझने का प्रयास करते रहो कि जो सांसारिक वस्तु तुम्हारा मन आकर्षित कर रही है, वह नाशवान् है और अपना ध्यान ईश्वर की ओर मोड़ दो।
- अगर मन एकाग्र न हो तो भी मन्त्र-जप नहीं छोड़ना चाहिए। अपना काम-काज करो। निरन्तर जप करते रहने से मन निर्वात-निष्कम्प दिये की लौ के समान हो जाता है। हवा ही लौ को कम्पित करती है। इसी प्रकार हमारी वासनाएँ और इच्छाएँ मन को चंचल वनाती हैं।
- जब पति और पत्नी एकमत होकर आध्यात्मिक साधना करते हैं, तब अध्यात्मिक प्रगति सरलता से होने लगती है।

ओ माँ शिवानी

बताओगी यदि नहीं,
तब कैसे रहूँगा,
इस भव में, जो मरुस्थली,
बोलो ओ जननी ?
दिन जाता, मास जाता,
बरस भी निमेष में जाता,
दिखाया नहीं अभी भी,
क्यों ओ भवानी ?
जीवन प्रभात में, आशा कितनी,
हृदय में छवि, ताकी-निहारी,
सोचा तुम मिल जाओगी,
ओ माँ जग-जननी ।
सभी देखा, सब बूझा,
संसार मिथ्या मरीचिका,
पर दर्शन-आशा मिटी नहीं,
ओ माँ शिवानी !

*

प्रार्थना

व्यर्थ व्यतीत होंगे, क्या मेरे दिन ?
आशा संजोये बैठा, मैं रात-दिन ।
तुम हो त्रिभुवननाथ,
मैं हूँ भिखारी अनाथ !
बोलूँ तुमको कैसे,
आओ हृदय में मेरे ?
पट हृदय-कुटीर के
रखे हैं खोल के ।
कृपा करके, एक बार भी,
करोगे हृदय, शांत नहीं ?

(बंगला रचनाओं का, डी० एस० पुरोहित द्वारा किया गया हिन्दी-भावानुवाद)

स्वच्छता का महत्व

—स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी ने आकाशवाणी के चिन्तन कार्यक्रम के लिए विभिन्न विषयों पर विचारोत्तेजक तथा उद्बोधक लेख लिखे थे, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा समय-समय पर प्रसारित किये जाते रहे हैं तथा काफी लोकप्रिय हुए हैं। प्रस्तुत लेख आकाशवाणी रायपुर से साभार गृहीत हुआ है। —सं०)

स्वच्छता को सभी देशों में सर्वोपरि महत्व दिया गया है। अँगरेजी में तो एक कहावत है— Cleanliness is next to godliness—अर्थात् ईश्वरत्व के बाद यदि किसी की महत्ता है तो वह है स्वच्छता की। यह उचित भी है, क्योंकि ईश्वर समस्त शुभ का प्रतीक है और जहाँ भी शुभत्व है, वहाँ हमें पावित्र्य का बोध होता है। पावित्र्य और शुभत्व दोनों साथ-साथ चलते हैं, एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। और फिर स्वच्छता का ही तो दूसरा नाम पावित्र्य है।

सर्वप्रथम है शारीरिक स्वच्छता। हम शरीर को जल के द्वारा स्वच्छ करते हैं। हमारे वस्त्र भी साफ-सुथरे होने चाहिए। इसका मतलब यह नहीं कि वे धोबी के यहाँ से ही धुले और इस्त्री किये हुए हों। तात्पर्य यह कि वे मैले न हों। उसके बाद है मन की पवित्रता। मन को बुरे विचारों से बचाने का तरीका यह है कि उसे व्यस्त रखा जाय तथा अवकाश के समय उसे स्वस्थ मनोरंजन में लगाया जाय। मन खाली रहने पर बहुत उछल-कूद करता है और कई प्रकार के अवांछनीय विचारों को पाल लेता है। फिर, वाणी पर नियंत्रण भी बहुत आवश्यक है। जो वचन पूर्णतः पवित्र न हों, उनसे हमें बचना चाहिए। हमें इस प्रकार से वर्ताव करना चाहिए, जिससे दूसरे लोग भी हमारे सामने कोई अनुचित चर्चा करने का साहस न कर सकें। हमें सदैव यही प्रयत्न करना चाहिए कि शुभ विचारों का एक अन्तर्प्रवाह हमारे अन्दर बहता रहे। वह बुरे विचारों से हमारी रक्षा करेगा और हमारे चारों ओर पवित्रता तथा नैतिकता का वातावरण बनाएगा।

पर हम यह ध्यान रखें कि ऐसा कहना तो सरल है, परन्तु करना नहीं। जब हम शुभ विचार मन में उठाने की कोशिश करते हैं, तो सामान्यत सफल नहीं होते। मन की पवित्रता के लिए हमें कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना होगा। पहली तो यह कि हम सोने से पहले ऐसा साहित्य न पढ़ें जो हमारी उत्तेजना को बढ़ाये और हमारी निकृष्ट मनोवृत्तियों को जगाये। कारण यह है कि हमारे

सो जाने के बाद भी वह उत्तेजना हमारे अवचेतन मन को प्रभावित करती रहती है। इसका परिणाम बहुत बुरा होता है। चाहिए तो यह कि हम उस समय अपने मन को किसी पवित्र विचार या ध्वनि में लगाएँ। ज्यों-ज्यों हम निद्रा की गोद में उतरते जायँ, त्यों-त्यों उस पवित्र विचार या ध्वनि का शान्तिपूर्ण और गहरा चिन्तन करें। अपने अवचेतन मन के उपादानों को बदलने का यह सबसे प्रभावी साधन है। वास्तविक शुचिता अवचेतन मन को बदलने पर आती है। हम जाग्रत अवस्था में बलपूर्वक अपने चेतन मन को अपवित्र बातों की ओर जाने से एक बार रोक भी सकते हैं, परन्तु यदि हमारा अवचेतन मन शुद्ध नहीं हुआ, तो स्वप्न में हम उन बातों का अनुभव करते हैं जिनकी ओर जाने से हमने चेतन मन को बलपूर्वक रोक दिया था। अतः मन की स्वच्छता का मापदण्ड स्वप्न है। यदि स्वप्न में भी हमारा मन अपवित्र बातों की ओर न जाय, तो समझ लेना चाहिए कि हमने मानसिक स्वच्छता हासिल कर ली है।

इस अवस्था की उपलब्धि के लिए दूसरी बात यह है कि हमें अच्छी आदतें डालनी चाहिए और उन्हें पुष्ट करना चाहिए। यह प्रक्रिया हमारे मन को शक्ति प्रदान करेगी। वास्तव में मन की दुर्बलता का कारण उसकी अस्वच्छता होती है। स्वच्छ मन शक्ति का भण्डार होता है। निर्मल हुआ मन निडरतापूर्वक सत्य का सामना करता है। मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा सत्य है और निर्मल मन मृत्यु-भय को भी जीत लेता है। वह हमें सिखाता है कि अरथी उतनी ही सत्य है, जितना कि पालना और श्मशान उतना ही सत्य है, जितनी कि सौरी। फिर एक से हम भागें क्यों और दूसरे से उत्फुल्ल क्यों हों? न तो हम जीवन से चिपकें और न मृत्यु से भागें।

जो व्यक्ति इस प्रकार तन, मन और वचन से स्वच्छ हो जाता है, वह ईश्वरत्व के निकट पहुँच जाता है। वह मानवता के लिए वरदानस्वरूप बन जाता है।

सब लोग बड़े दुःख से कहते हैं, "संसार में कितना कष्ट है। हमने ईश्वर की इतनी प्रार्थना की है फिर भी दुःखों का अन्त नहीं है।" किन्तु दुःख तो ईश्वर का वरदान है। यह उनकी करुणा का प्रतीक है।

—श्रीमाँ सारदा देवी

जीवन और मृत्यु—एक खेल

—स्वामी निखिलेश्वरानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल
पोरबन्दर (गुजरात)

जीवन की सबसे निश्चित यदि कोई सत्य घटना है तो वह है मृत्यु। यह मृत्यु सबसे अधिक निश्चित होते हुए भी उसका समय सबसे अधिक अनिश्चित है। यह मृत्यु कभी भी मानव जीवन के हँसते-खेलते जीवन का अंत लाकर उसका खेल समाप्त कर देती है। प्रियजनों की मृत्यु उसके सभी निकट सम्बन्धियों को दुःख में डुबा देती है। "अभी कल तक जो हमारे साथ था, आज वह नहीं है, और न फिर कभी किसी दिन हमारे बीच में आएगा।" ऐसा सोचना परिवारजनों को बहुत व्याकुल कर देता है। आँसू-दुःख व कभी लौट कर नहीं आने की व्यथा से मृतक के परिवार वालों का जीवन दुःखी हो जाता है। तो इसके बाद इस परिस्थिति से उबरने के लिए हमें क्या करना चाहिए ?

जीवन में इस तरह की यदि कोई परिस्थिति आ जाए तो उससे निकलने के दो मार्ग हैं। प्रथम मार्ग है, नकारात्मक मार्ग। इसमें दुःख आने पर, रोना और सिर्फ रोना तथा विधाता को दोष देकर दुःखी होना और बाद में धीरे-धीरे दुःख को भूलते जाना है। फिर धीरे-धीरे उन परिस्थितियों से निकल कर, मनुष्य अपने पूर्ववत् कार्यों में लग जाता है। अधिकतर लोगों के जीवन में यही होता है। इस तरह उनका जीवनचक्र चलता रहता है।

पर एक दूसरा भी मार्ग है। यह मार्ग है, दुःख के साथ चिन्तन द्वारा मृत्यु के रहस्य को जानने का मार्ग। प्रियजन को मृत्यु के बाद जीवन में गहरा आघात लगता है। उस समय रोने की अपेक्षा बुद्धि से काम लेकर मृत्यु के रहस्य को जानने का मार्ग ढूँढना। क्योंकि रोने से प्रियजन की आत्मा को दुःख पहुँचता है। यदि उसके बदले हम प्रार्थना करें तो हमें तो शांति मिलती ही है साथ ही मृत-आत्मा को भी शांति मिलती है। मन में शांति आने से दुःख का आघात कम हो जाता है तथा मन में आता है कि मृत्यु क्या है ?

एक घटना कुमार सिद्धार्थ के जीवन में भी घटी थी। उन्होंने कभी मृत शरीर को नहीं देखा था। दाह संस्कार के लिए ले जाते हुए शव को देखकर उन्होंने अपने रथ के सारथी छंदक से पूछा, "ये लोग इस मनुष्य को इस तरह बांधकर कहाँ ले जा रहे हैं ?"

"यह मनुष्य मर गया है, इसलिए इसे बांधकर श्मशान घाट ले जा रहे हैं।"

"पर यह बांधा हुआ है, यह बोलता क्यों नहीं ?"

"क्योंकि यह मर गया है, और मुर्दा बन गया है, इसलिए यह कभी नहीं बोलेगा।"

"तो अब इसे क्या करेंगे ?"

"अब इसे जला देंगे।"

"अच्छा—तो अब इसे दुःख नहीं होगा ?"

"नहीं, अब कुछ नहीं होगा, इसका जीवन पूर्ण हो गया है, इसे अब सुख-दुःख कुछ नहीं होगा।"

"इसीकी तरह दूसरे भी मरेंगे ?"

"अरे। राजकुमार, सभी को एक न एक दिन मरना है। एक भी मनुष्य ऐसा नहीं है जिसका जन्म हुआ हो और उसकी मृत्यु न हो।"

"तो क्या सब मरने के लिए ही जीते हैं ?"

"हाँ, हर एक का अंत यही है।"

"तो क्या मुझे भी मरना पड़ेगा ? मेरे पिता कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन, मेरी प्रिय यशोधरा, मेरा पुत्र राहुल इन सबको मरना पड़ेगा ? सारथी, क्या तू भी मर जाएगा ?"

"हाँ—सबको मरना पड़ेगा।"

"पर कब ?"

"यह नहीं कह सकते। दुनिया में सबसे निश्चित घटना मृत्यु ही है; और सबसे अनिश्चित घटना भी मृत्यु ही है। किसे, कब, किस तरह से मृत्यु आएगी यह हम नहीं कह सकते।"

एक रोगी और एक वृद्ध को देखकर सिद्धार्थ ने जाना कि हर एक मनुष्य की ऐसी स्थिति आएगी और वह फिर मर जाएगा। इस घटना से राजकुमार के मन को गहरा आघात लगा। राजकुमार का मन विचलित हो गया। मृत्यु के आघात ने उन्हें सच्चे ज्ञान की खोज करने की प्रेरणा दी। वह उसे ढूंढने निकल गये। अन्त में निर्वाण प्राप्त कर वह महात्मा बुद्ध बने। यह है मृत्यु के दुःख में से निकलने का सच्चा मार्ग। चिन्तन करने से मन समझ जाता है कि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी निश्चित है। जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म भी निश्चित है। यह समझ में आते ही मन जान जाता है कि जीवन और मृत्यु एक खेल है।

गीता में कहा है —

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ (२/२७)

अर्थात् जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है अतः इस बिना उपाय वाले विषय में तुझे शोक नहीं करना चाहिए।

अधिकतर लोग जीवन को तो एक खेल समझ कर जीते हैं, परन्तु मृत्यु को एक खेल समझकर स्वीकार नहीं कर पाते। इसलिए जब मृत्यु का सामना करना पड़ता है, तो वे परेशान हो जाते हैं। परन्तु वास्तव में मृत्यु भी एक खेल है। इसलिए यदि जीवन को अच्छी तरह जीना है तो मृत्यु को भी एक खेल की तरह स्वीकार करना होगा। जो खेल को उसके नियमों के अनुसार खेलते हैं वे खेल को अच्छी प्रकार खेल सकते हैं। और उन्हें आनन्द मिलता है। इसलिए पहले खेल के नियमों का जानना जरूरी है।

जीवन और मृत्यु खेल के दो अटल नियम हैं— कर्म का नियम और पुनर्जन्म का नियम। ये नियम भौतिक जगत के गुरुत्वाकर्षण की तरह हैं और हरएक पर लागू होते हैं। कोई व्यक्ति गुरुत्वाकर्षण के नियम को नहीं मानता और सातवीं मंजिल से नीचे गिरे तो गुरुत्वाकर्षण के नियम को तो अपना काम करना है। वह नीचे गिरेगा और मर जाएगा। बाद में आत्मा तो ऊपर चली जाएगी पर शरीर नहीं। महान वैज्ञानिक गैलीलियो ने कहा कि, 'पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है. उसकी इस खोज पर उसे जेल की सजा हुई, उसे कहा गया कि यदि यह मान ले कि ऐसा नहीं है तो उसे छोड़ दिया जायगा। जेल से निकलने के लिए उसने राजदरबार में कह दिया कि सूर्य पृथ्वी के आसपास घूमता है, यह कहते ही वह छूट गया। पर छूटने के बाद उसने कहा कि उसके कहने मात्र से जो सच है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, यह बदल तो नहीं सकता। यह

किसी ने सुन लिया और उसे जेल की सजा हुई उसके बाद उसे फांसी दे दी गई। यह अटल सत्य किसी को स्वीकार हो या अस्वीकार उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। जीवन में हम जो कर्म करते हैं वह अटल व निश्चित है। ये नियम यह बताते हैं कि, जैसा बोओगे—वैसा काटोगे, जैसा करोगे—वैसा भरोगे। अर्थात्—बोए पेड़ बबूल के तो आम कहाँ से खाए। जैसी करनी वैसी भरनी। इसलिए जीवन में सत्कर्म करोगे तो उसका फल भी मीठा मिलेगा। अगर कोई मनुष्य यह कहता है कि वह कर्म का सिद्धांत नहीं मानता तो यह उसका झूठा भ्रम है। कर्म का फल मिलता है। यह किसी को नहीं छोड़ता। चाहे कोई राजा-महाराजा हो या भिखारी। यह सब के लिए एक समान है। दुनिया के बनाए नियमों से आप छूट सकते हैं और अपनी पहुँच का प्रयोग करके अपनी सजा कम कर सकते हैं। परन्तु कर्म के फल से छूटना कठिन है। किसी की पहुँच नहीं चलती। सारा जीवन यदि कोई सत्कर्म करता है तो दूसरे जन्म में भी श्रीमंत या पवित्र घर में जन्म मिलता है। जो कोई योग साधना करते हुए जीवन व्यतीत करता है उसे मृत्यु के बाद ब्रह्म मिलता है और बार-बार जन्म नहीं लेना पड़ता। जो दुराचारी है, दूसरों को दुःख देता है, ऐसे मनुष्यों का निम्न योनि में जन्म होता है। इसलिए कर्म के सिद्धान्त को मानकर उसका ठीक प्रकार से पालन करे तो जीवन आनन्दपूर्वक बीत सकता है। जीवन के खेल के श्रेष्ठ खिलाड़ी तो दोनों ही हैं, पर मृत्यु के खेल का भी अच्छा खिलाड़ी बन सकता है। इसलिए परमात्मा ने उसे पृथ्वी पर भेजा है तो उस समय को अच्छे कर्मों में बिताओ। इससे मनुष्य को जीवन का सच्चा आनन्द मिलता है। उसका मन सदा प्रसन्न रहता है। जीवन बोझ नहीं लगता और मृत्यु का भय भी नहीं रहता। मनुष्य हँसते-हँसते मृत्यु को स्वीकार लेता है। क्योंकि उसने परमात्मा द्वारा दिया अवसर अच्छे कर्मों में लगाया है और वह अब आनन्दधाम में जा रहा है। उसे जाने का दुःख नहीं होता। सत् कर्मों द्वारा जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए कबीर जी ने कहा है :—

'जब तू आया जगत में, जगत हँसे तुम रोए,
ऐसी करनी कर चलो, तुम हँसो जग रोए।'

कर्म के सिद्धान्त का अगर ठीक प्रकार पालन न करो तो तत्काल दण्ड नहीं मिलता। जब तक उसके पुण्य कर्म खत्म नहीं होते तब तक उसे लगता है कि जीवन भोगने के लिए है, मौज-मस्ती के लिए है,। यह विचार कर वह उसमें डूब जाता है। चार्वाक् के सिद्धान्त के अनुसार 'ऋणं कृत्वा घृतं पीबेत' अर्थात् यदि धन न हो तो उधार लेकर भी घी खाओ—मौज मजा कर लो। यह सोचकर हमलोग भोग में डूब जाते हैं।

यक्ष के प्रश्न के उत्तर में युधिष्ठिर ने बताया था कि हररोज हम अपने सामने अनेक लोगों की मृत्यु होते देखते हैं पर फिर भी मनुष्य यह मानता है कि उसे कभी मृत्यु नहीं आएगी। और इस तरह वह जीवन व्यतीत करता है। नाम, यश, कीर्त्ति, सत्ता, सम्पत्ति के लिए उसकी लालसा कभी कम नहीं होती। जीवन का अन्त आता है तो मालूम पड़ता है कि अब तो हाथ में से बाजी निकल गई। अतएव मनुष्य को मृत्यु को याद रखते हुए अच्छी तरह जीवन जीना चाहिए। हर दिन यह मान कर शुरू करो कि आध्यात्मिक साधना का यह पहला दिन है और पृथ्वी पर अन्तिम। तब ही वह पृथ्वी पर जीवन अच्छी तरह व्यतीत कर सकता है।

संत एकनाथ जी के पास एक मनुष्य आया और कहने लगा कि—आप हर परिस्थिति में कैसे शांत रहते हैं? आप मुझे भी शांत रहने की कला सिखा दीजिए। एकनाथ जी ने उसके मुँह की

ओर देख कर गंभीर स्वर में कहा; "अरे भाई, यह तो मैं तुम्हें नहीं सिखा सकाता। किन्तु सात दिन में तो तू मर जाएगा।" "अरे, सात दिन में मेरी मृत्यु हो जाएगी, अभी तो मुझे बहुत सारे काम करने हैं।" यह कह कर वह चला गया। सातवें दिन एकनाथ जी उसके घर गए तो देखा वह बिस्तर पर बीमार पड़ा था। एकनाथ जी ने पूछा, "तू क्यों विस्तर पर बीमार जैसा पड़ा है।" "कल से बीमार हूँ और आज मृत्यु की राह देख रहा हूँ। आज सातवाँ दिन है, मेरा आखरी दिन।" किसने कहा? "क्यों आपने ही तो कहा था कि सातवें दिन तो तू मर जाएगा।" "हाँ, पर तू यह वता कि इन सात दिनों में तूने किस-किस के साथ झगड़ा किया? तेरा मन कितनी बार अशांत हुआ?"

"अरे, मुझे तो मौत दिखाई पड़ रही थी, सो मैं किसके साथ झगड़ा करता? और, किसे बुरा कहूँ, काम निपटाने में ही मेरे छ: दिवस बीत गए।" तब एकनाथ जी ने कहा, "मृत्यु को सदा याद रखो, यही हर एक परिस्थिति में शांत रहने का उपाय है, और यह है जीवन जीने की कला की शिक्षा।" किसी ने इस संदर्भ में कहा है :—

मौत जब तक नजर नहीं आती,
जिन्दगी राह पर नहीं आती।
जिसने उसकी नजर को देख लिया
उसको दुनिया नजर नहीं आती।

मृत्यु का स्मरण जीवन को पवित्र रखता है और सही रास्ते पर चलना सिखाता है। उसके बाद वह मृत्यु के बाद के जीवन की रचना करता है। इसलिए जो जीवन का नियम है, वह ही मृत्यु का नियम है। यह है पुनर्जन्म का सिद्धान्त। जो जन्म लेता है वह अवश्य मृत्यु पाता है, जो मृत्यु पाता है वह जन्म अवश्य लेता है। यह मृत्यु का नियम है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि :—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्माद परि हार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

"जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु निश्चित है, मरने वाले का जन्म भी निश्चित है। इसलिए इस अटल सत्य पर शोक करना उचित नहीं।"

इसलिए जिसकी मृत्यु आती है वह तो पंच-महाभूत का शरीर है। उसमें जो आत्मा है वह अजर, अमर, अविनाशी है। इससे यह पता चलता है कि कभी कोई शरीर अमर नहीं है और आत्मा कभी मरती नहीं है। बहुत से मनुष्य यह कहते हैं कि हिमालय में हजारो सालों से योगी रह रहे हैं। यह सच बात नहीं है। हाँ—वह सूक्ष्म रूप में जरूर विचरण करते हैं। सिद्ध योगी शायद सूक्ष्म देह में रहते हैं। पर किसी की स्थूल देह (शरीर) नहीं रह सकती। जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है। "योगी हो या अवतार पुरुष। वे थोड़ा अधिक जीवन बिता सकते हैं। पर कितना? कुछ वर्ष। अन्त में तो उन्हें भी शरीर छोड़ना पड़ता है। क्योंकि यही अटल नियम है। प्रसिद्ध पौराणिक कथा में सावित्री ने अपनी प्रार्थना से यमराज से अपने मृत-पति सत्यवान का जीवन मांगा, पर कितने समय तक? अन्त में तो सत्यवान और सावित्री को भी यह शरीर छोड़ना पड़ा। क्योंकि यही नियम है। प्रार्थना द्वारा मनुष्य कुछ समय और जीवन बिता सकता है, पर उसे अमर नहीं कर सकता।

मध्य प्रदेश में घटी कुछ समय पहले की एक घटना है कि एक महिला के पति को ब्रेन कैंसर था। उसका आपरेशन कई घंटे चलना था फिर भी कोई आशा नहीं थी कि वह बच जाएगा। इसलिए डाक्टर यह जोखिम नहीं लेना चाहते थे। पर इस बहन को भगवान पर पूरी श्रद्धा थी।

उसका सारा जीवन प्रार्थना में व्यतीत हुआ था। उसने डाक्टरों से कहा—"भगवान के साथ यह अन्तिम खेल खेलने की मेरी इच्छा है। आप आपरेशन करें।" मद्रास के वेलोर अस्पताल में उसके पति का आपरेशन हुआ। कई घंटे चला। सभी को आश्चर्य हुआ कि यह आपरेशन सफल हुआ है और वह व्यक्ति आज तक जीवित है। डाक्टरों को आज तक समझ नहीं आया कि यह आपरेशन कैसे सफल हुआ। उन्होंने उसकी विडियो फिल्म बनाई, उसे विदेशों में भेजा। वहाँ के डाक्टरों को भी आश्चर्य है कि यह व्यक्ति कैसे जीवित है। पर उस बहन ने भगवान से जो प्रार्थना की थी यह उसका ही परिणाम है। प्रार्थना से मृत्यु को टाला जा सकता है। आयु को बढ़ाया जा सकता है पर हमेशा के लिए नहीं। मनुष्य का फिर जब अन्त आता है तो उसे यह शरीर छोड़ना पड़ता है। आत्मा एक शरीर में नहीं रहती, मनुष्य को जैसे नया वस्त्र पहनना अच्छा लगता है वैसे ही आत्मा भी शरीर बदलती रहती है। इस जन्म के कर्म के अनुसार दूसरे जन्म में शरीर मिलता है। यह जीवन-मृत्यु का नियम है। श्री कृष्ण भगवान गीता में कहते हैं :—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

जब श्रीरामकृष्ण जी ने शरीर छोड़ा तो श्री माँ सारदा देवी रोने लगीं। बोलीं, "माँ काली तू मुझे छोड़कर कहां चली गई? वे श्रीरामकृष्ण को साक्षात काली मानती थी। उनका रोना सुनकर श्रीरामकृष्ण ने दर्शन देकर कहा, "तुम किसलिए रोती हो? मैं कहां मरा हूँ, मैं तो एक घर से दूसरे घर में चला गया हूँ।" उनके दर्शन के पश्चात् माँ सारदा देवी समझ गयीं कि श्रीरामकृष्ण भौतिक जगत में से निकलकर सूक्ष्म जगत में चले गए हैं। उनकी कभी मृत्यु नहीं हो सकती। वो सदा सूक्ष्म रूप में मेरे साथ हैं। अवतार पुरुष हमेशा विद्यमान रहते हैं और अपने भक्तों को दर्शन देते रहते हैं। उन्हें सही मार्ग बताते हैं। पर स्थूल देह का उन्हें भी त्याग करना पड़ता है। परमात्मा भी देह धारण कर पृथ्वी पर आते हैं और अपना काम करके यह देह त्याग कर चले जाते हैं। देहधारी परमात्मा को भी मृत्यु का नियम पालन करना पड़ता है।

योगी पुरुषों को आत्मा की अमरता और देह की नश्वरता का पता होता है इसलिए उन्हें देह का मोह नहीं होता। विश्व विजय पर निकले सिकन्दर के गुरु ने कहा था, "तुम हिन्द में जा रहे हो वहाँ से किसी संत-महात्मा को मेरे लिए लेते आना।" हिन्द में विजय मिलने के बाद सिकन्दर ने एक जंगल में से निकलते समय एक महात्मा को पेड़ के नीचे बैठे देखा। उसके पास जाकर उसने कहा, "तुम मेरे साथ मेरे देश चलो, मैं तुम्हें अपार सम्पत्ति दूँगा। तुम्हें इस तरह साधु बनकर पेड़ के नीचे नहीं रहना पड़ेगा। तुम्हें राजमहल के सुख दूँगा।" तब महात्मा ने कहा, "मैं क्यों तुम्हारे साथ चलूँ? मुझे यहाँ किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। वृक्ष मुझे फल देते हैं। नदी मुझे जल देती है। वस्त्रों की मुझे जरूरत नहीं। मैं यहां सदा आनन्द में हूँ।" कभी किसी से कुछ न सुनने वाले सिकन्दर को यह जवाब अपना अपमान लगा। उसने महात्मा को मारने के लिए म्यान में से तलवार निकाली, यह देख महात्मा बोल उठे—"मूर्ख, तेरी तलवार मेरी जान ले नहीं सकती। अग्नि मुझे जला नहीं सकती, वायु मुझे सुखा नहीं सकती, पानी मुझे भिगा नहीं सकता मैं अजर, अमर आत्मा हूँ।"

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः।
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

मैं बुद्धि नहीं, चित्त नहीं, अहंकार नहीं, पर चिदानंदरूप शिव हूँ, अनन्त आनन्द हूँ। तू मुझे क्या मारेगा।

आत्मानुभूति की यह वाणी सुनकर वह हैरान हो गया। उसकी तलवार रुक गई। तब महात्मा ने कहा, "कि तू खुद ही अपने देश में नहीं पहुँच सकता मुझे क्या ले जाएगा। आत्मा की अमरता के आगे झुक कर वह चला गया। अपने देश पहुँचने से पहले ही सिकन्दर की मृत्यु हो गई उस समय उसे हिन्द के महात्मा का ध्यान जरूर आया होगा।

आत्मा का ज्ञान करने वाले ऐसे योगी और सिद्ध पुरुष मृत्यु को मृत्यु रूप में जानते ही नहीं। श्रीरामकृष्ण की तरह स्थूल में से सूक्ष्म में जाना उनके लिए एक सहज घटना है। इससे वह मृत्यु के भय से मुक्त बनकर अमरता का जीवन जीते हैं। जो मृत्यु को जानते हैं वह जीवन को भी जानते हैं। जीवन को जानने के लिए, इसके रहस्य को जानने के लिए नचिकेता ने मृत्यु के देवता के पास जाकर विद्या प्राप्त की थी। नचिकेता यमराज से मृत्यु के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिए कहा तो यमराज ने उसे कहा, "तुझे यह जान कर क्या करना है। यह प्रश्न तो बहुत जटिल है। अच्छे-अच्छे ऋषि तपस्वी भी नहीं जान सके। तू तो अभी बालक है। यह बात छोड़ दे। दूसरा कुछ मांग ले।"

"नहीं मुझे तो यही जानना है, "मृत्यु का रहस्य"। यदि दूसरे नहीं जान सके तो न सही, पर मुझे तो यह जरूर जानना है।"

"इसके बदले में मैं तुम्हें राज्य दूँगा, अपार सम्पत्ति दूँगा, हाथी, घोड़े एवं नर्तकियाँ दूँगा।"

नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। आप मुझे मृत्यु का रहस्य बताइए।" अनेक प्रलोभन देने के बाद भी बालक अटल रहा। यह देख कर यमराज बहुत प्रसन्न हुए और उसे आत्म विद्या का ज्ञान दिया। जब मन में से सब शंकाएँ दूर हो जाएँ, कोई प्रलोभन न हो, अंतर में एक आत्मज्ञान प्राप्त करने की तीव्र इच्छा हो, तो नचिकेता, कुमार सिद्धार्थ या स्वामी विवेकानन्द की तरह आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है। जीवन और मृत्यु का रहस्य समझ में आता है। यदि यह सामान्य जिज्ञासा हो या आकस्मिक कारण से यह इच्छा हुई हो तो यह रहस्य नहीं मिलता। शायद बौद्धिक ज्ञान मिल जाए पर वह जीवन में काम नहीं आता और न ही उसकी अनुभूति होती है।

यमराज ने नचिकेता से कहा :—

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

सभी प्राणियों में यह आत्मा रहती है पर दिखाई नहीं देती। पर सूक्ष्म दर्शन करने वालों को, एकाग्रता वाली सूक्ष्म बुद्धि से दिखाई देती है। यह आत्मज्ञान यमराज ने नचिकेता को दिया। इससे उसे ज्ञान मिला और वह मृत्यु के रहस्य को समझ गया। मृत्यु, जीवन का अन्त नहीं है। क्योंकि शरीर के अन्त के साथ जीवन नष्ट नहीं होता। यही है 'जीवन और मृत्यु' का नियम। जो मनुष्य यह नियम जानकर अपने जीवन में नसका पालन करते हैं, वे जीवन के स्वामी बन कर, जीवन और मृत्यु के खेल पर विजय प्राप्त कर, पृथ्वी पर अपना जीवन सार्थक करते हैं। दैनिक जीवन में शांति प्राप्त करते हैं और परम शांति, शाश्वत शांति को प्राप्त कर लेते हैं।

इसलिए अपने स्वजनों की विदा वेला में हम प्रभु से प्रार्थना करें, 'हे प्रभु, मृत-आत्मा को सद्गति दो, उनके स्वजनों को सद्बुद्धि दो ताकि इस विपत्ति के समय उन्हें भी यह दुःख सहने की शक्ति मिले।"

[रामकृष्ण आश्रम, राजकोट से प्रकाशित, रामकृष्ण विवेकानन्द भावधारा की गुजराती मासिक पत्रिका के अप्रैल १९९९ अंक में छपे उपर्युक्त लेख का हिन्दी अनुवाद पोरबन्दर की श्रीमती योगेश धीमान ने किया है। —सं०]

□

भारत का भविष्य

हमारा अतीत तो गौरवमय था ही, मेरा विश्वास है कि भविष्य और भी गौरवमय होगा। अतीत से ही भविष्य का निर्माण होता है। और जितना ही मैंने अतीत का अध्ययन किया है, जितनी ही भूतकाल की ओर दृष्टि डाली है, उतना ही अपने पूर्वजों के प्रति गर्व मुझमें आता गया है। हमारे पूर्वज महान थे, यह बात हमें याद रखनी होगी। प्रत्येक सदी में बरसाती मेढ़कों के समान नये नये राष्ट्रों का उत्थान और पतन होता रहा है, वे मानो शून्य से पैदा होते हैं, थोड़े दिन खुराफात मचाकर फिर विनाश की गहराइयों में खो जाते हैं; परन्तु यह महान भारतीय राष्ट्र, जिसे अन्य किसी भी राष्ट्र से अधिक दुर्भाग्यों, संकटों तथा उथल-पुथल का सामना करना पड़ा, आज भी कायम है। क्यों एक राष्ट्र जीवित रहता है और दूसरा नष्ट हो जाता है? जीवन-संग्राम में घृणा टिक सकती है या प्रेम? भोग-विलास चिरस्थायी है या त्याग? भौतिकता टिक सकती है या आध्यात्मिकता?

वहाँ पाश्चात्य देश वाले इस बात की चेष्टा में लगे हैं कि मनुष्य अधिक-से-अधिक कितना वैभव संग्रह कर सकता है और यहाँ हम इस बात का प्रयास करते हैं कि कम-से-कम कितने में हमारा काम चल सकता है! यह द्वन्द्वयुद्ध और मतभेद अभी शताब्दियों तक जारी रहेगा। परन्तु इतिहास में यदि कुछ भी सत्यता है और वर्तमान लक्षणों से भविष्य का जो कुछ आभास मिलता है, वह यह है कि अन्त में उन्हीं की विजय होगी, जो कम-से-कम वस्तुओं पर निर्भर रहकर जीवन-निर्वाह करने तथा आत्मसंयम का अभ्यास की कोशिश में है; और जो राष्ट्र भोग-विलास तथा ऐश्वर्य के उपासक हैं, वे वर्तमान में चाहे जितने भी बलशाली क्यों न लगें, अन्त में अवश्य ही विनाश को प्राप्त हो संसार से लुप्त हो जाएँगे।

—स्वामी विवेकानन्द

मनुष्य में देवत्व प्राप्त करने की शक्ति

—डॉ० शिवनन्दन प्रसाद सिन्हा
(पूर्व कुलपति, पटना विश्वविद्यालय)

उपनिषद् में कहा गया है—'तत्वमसि' अर्थात् वह तुम हो। इस छोटे वाक्य का मतलब यह है कि मनुष्य में देवत्व प्राप्त करने की शक्ति है। आत्म संयम और आत्मशुद्धि से यह क्षमता प्राप्त की जा सकती है। जब मनुष्य त्यागमय, धर्ममय, सेवामय, सद्भावमय, स्नेहमय और परोपकारमय जीवन जीता है तो वह आत्मा(ब्रह्म)प्रकाशित होती है। ऐसी आत्मा 'न जायते म्रियते वा कदाचित, अविनाशीव अयमात्मा' होता है। भोगवासनामय, स्वार्थमय, अहंकारमय और अधर्ममय जीवन अंधकारमय जीना है —मृत्यु-तुल्य (ते मृत्योः यन्ति विततस्य पाशम्) और इसके विपरीत कामना रहित 'स्थितप्रज्ञ' धीर मनुष्य लोक हित में कर्म करता हुआ अमरत्व प्राप्त करता है और संसार में रहता हुआ भी परमब्रह्म को प्राप्त करता है (अथ मर्त्यः अमृत भवति)। यह मार्ग सूक्ष्म और कठिन है (अणु पन्था विततः पुराण। उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या दुर्ग पथस्थत्त्क वयो वदंति)। श्वेताश्वतर उपनिषद् के ऋषि अंधकार से परे, तमोगुण से परे आदित्य की भांति चमकता परमब्रह्म परमात्मा को जान कर ही 'अमृतस्यपुत्रा' होने की बात कहते हैं। और कोई अन्य मार्ग हैं ही नहीं (वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यते अयनाय)। इस पथ पर चलने वाले समष्टि-हित में ही व्यष्टि-हित मानते हैं। और इस पथ पर दुष्कर्म करने वाले चल ही नहीं सकते (ऋतस्य पंथा न तरन्ति दुष्कृतः) महात्मा गांधी सहित अन्य महापुरुषों ने भी अपना आत्म विकाश 'दीन हीन भंगी की कुटिया के निवासी' में बिराट विश्वरूप सत्य नारायण का दर्शन कर किया।

'आत्म-विकास' कैसे हो ? स्वामी विवेकानन्द ने रामकृष्ण मिशन का उद्देश्य रखा था—'आत्मनोमोक्षार्थ जगत्हिताय च' जगत-हित ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। समस्त जीवों में व्यक्त ईश्वर की सेवा ('शिवबोध से जीव सेवा') ही सर्वोच्च 'स्वधर्म' है और इससे मनुष्य अपने अन्दर निहित देवत्व जागृत कर उच्चतम स्थिति प्राप्त कर लेता है। ऋग्वेद के अनुसार ('विश्वे अमृतस्तय पुत्राः') मानवीय चेतना के भीतर स्थित देवत्व आत्मवृद्धि से मनुष्य निम्न स्तर से उच्चतर स्तर तक पहुँच जाता है। डा० राधाकृष्णन के शब्दों में—'हम सभी में एक प्रकाश का भी प्रकाश है—'ज्योतिसम् ज्योतिः'। जो परमात्मा से साक्षात्कार करते हैं वे समाज के प्रति कठोर दृष्टिकोण नहीं रखते हैं और मानव के दुःखों के प्रति सहानुभूति का दृष्टिकोण रखते हैं।' महात्मा गांधी ने कहा था—'समस्त मानव की सेवा ही मेरे लिये मोक्ष-द्वार है।' स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'प्रत्येक आत्मा अवयक्त आत्मा है। वाह्य और अन्तः प्रकृति को वशीभूतकर इस अन्तःस्थ ब्रह्मभाव व्यक्त करना ही जीवन का लक्ष्य है। कर्म, मनः संयम, ज्ञान उपासना इनमें से एक या सभी उपायों का सहारा ले ब्रह्मभाव व्यक्त करके मुक्त हो सकता है।'

जगत कल्याण के लिये अपने अहंकार का त्याग करना होगा। अहम-त्याग तभी संभव है जब 'स्व' का विस्तार प्रेम, करुणा और मैत्री की ओर प्रवृत होगा। अहम अल्प की उपासना है और आत्माभूमा की। अहम् विसर्जन से मनुष्य 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की ओर प्रवृत हो जाता है। और मनुष्य ईश्वर का दर्शन दरिद्र नारायण में करता है। महात्मा गांधी ने कहा था—'मैं भगवान का दर्शन मानव सेवा में करता हूं···वे तो सब मनुष्य के अन्दर रहते हैं।' भगवान रामकृष्ण परमहंस ने कहा—'जीव सेवा-शिव सेवा' भगवान व्यास ने सभी पुराणों का सार परोपकार को माना—'परोपकाराय पुण्याय, पापाय परपीड़नम्'। संत कबीर ने अपनी एक रचना में कहा—'मों को कहाँ ढूंढ़ी बन्दे, मैं तो तेरे पास में। ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलाश में।' संत तुलसीदास ने 'परहित सरिसधर्म नहीं भाई, पर पीड़ा सम नहि अघमाई' कही।

मानुष शरीर प्रधान रूप से सेवा के लिए बना है। जिसने अहंकार को त्यागा वही निष्काम कर्म के योग्य होगा। और ऐसा ही व्यक्ति जगतहित की बात करेगा। कहा भी गया है—'सावधान मानद मदहीना, धीर धरम गति परम प्रवीना'। गीता दर्शन के अनुसार—ते प्राप्तुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः'—जो मनुष्य सब प्राणियों में ईश्वर का दर्शन कर कल्याण करता रहता है—वह ईश्वर को प्राप्त होता है और उनका प्रेम प्राप्त करता है ('योमद् भक्तः स मे प्रिय')।

महाकवि श्री जयशंकर प्रसाद ने अपने महाकाव्य 'कामायनी' में इसी उदात्र चिंतन को इस रूप में व्यक्त किया है—

"अपने में सब कुछ भर कैसे
व्यक्ति विकास करेगा।
यह एकांत स्वार्थ भीषण है
अपना नाश करेगा।
औरों को हंसते देखो मनु,
हंसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत करलो
सबको सुखी बनाओ।"

उपनिषद में भी 'लोका समस्ता सुखिनः भवन्तु' की कामना की गयी है। करुणामयी मां टेरेसा जो पीड़ितों की सेवा में ईश्वर का दर्शन करती थी—उनके शब्दों में—

"मौन का फल है प्रार्थना
प्रार्थना का फल है विश्वास
विश्वास का फल है प्रेम
प्रेम का फल है सेवा
सेवा का फल है शांति।"

शांति की अनुभूति ही तो 'सत्‌चित् आनन्द' है। परोपकार की भावना से निष्काम सेवा से काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष और अहंकार आदि सभी दुर्गुणों का स्वतः अन्त हो जाता है और मनुष्य परमशांति को प्राप्त करता है। ऐसी ही आत्मा मृत्यु रूप संसार से पार कर 'अमृतस्य पुत्र' हो जाती है।

तो फिर कैसी 'जिजीविषा'? इच्छा तो ईश्वरीय जीने की करनी है। अहंकार, अविनय मिटाते हुए मन की असीमित कामनाओं और विषयों की मृगतृष्णा को शमन करते हुए समस्त प्राणियों और जीवों के प्रति हृदय में दया का विस्तार करने की प्रार्थना करनी है—इच्छा करनी है। श्री मद्‌भागवत् में कहा गया—

'न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गनापुनर्भवम्
कामये दुख तप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्'

(न मुझे राज्य की इच्छा है, न स्वर्ग न ही मोक्ष की दुख से तपे प्राणियों की पीड़ा नाश हो—एक मात्र इच्छा है, हमें ऐसी इच्छा पूरी करने के लिए निम्नस्तरीय प्रवृतियों के विरुद्ध युद्ध छेड़ना है। ऐसा तभी संभव है—जब उपनिषद के उस महावाक्य के अनुसार 'त्येक्तेन भुंजी था'—'त्याग से भोग करेंगे।'

भगवान श्री शंकराचार्य ने अपनी षट्पदी में जो प्रार्थना की है इसे आत्मसात् करना होगा। इसमें अपनी आत्मा के विस्तार के लिए सर्वभूतों के प्रति प्रेम और दया की याचना है—

'अविनयमपनय विष्णो दमय मनः
शमय विषयमृग तृष्णाम्
भूतदयां विस्तारय तारये संसार
सागरतः।'

अर्थात् हे सर्वव्यापी प्रभो! हमारे जीवन में जो अविनय और चंचलता है—इसे दूर करो। विषयों के प्रति जो हमारी तृष्णाएँ हैं – वे समाप्त हों और समस्त भूतों के प्रति दया की भावना विकसित हो। हमारे अन्दर इसे आत्मसात् करने की शक्ति दो। ताकि संसार सागर से पारकर इस परम प्रकाश तक पहुँच सकूँ (आरोह तमसो ज्योतिः)।

और अन्त में ऋग्वेद की उस वाणी से समापन करना चाहूँगा—जिसमें श्रेष्ठ आचरण धारण करने की कामना है (आचारो प्रथमो धर्मः)।

'अनागसो अदितये देवस्य
सविल सवे।
विश्वाकामानि धीमहि।'

अर्थात् हम निश्पाप होकर दिव्यगुण सम्पन्न प्रकाशपूर्ण प्रेरक परमात्मा की प्रेरणा से अखण्ड अवस्था की प्राप्ति के लिए बढ़ें और समस्त श्रेष्ठ पदार्थों को धारण करें।

तमसो मां ज्योतिगमय
असतो मां सद्गमय
मृत्योर्मां अमृतंगमय

(हमें अंधकार से प्रकाश, असत्य से सत्य और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ।)

□

संसार में धन की जरूरत है तो सही, परन्तु उसके लिए ज्यादा सोचना नहीं। यदृच्छालाभ सन्तुष्ट रहना—अपने आप जो मिल जाए उसी में संतोष करना—सबसे अच्छा भाव है। संचय के लिए ज्यादा सोच मत करो। जिन्होंने अपना मन-प्राण प्रभु को सौंप दिया है, जो उनके भक्त हैं, शरणागत हैं, वे तो यह सब इतना नहीं सोचा करते। उनके पास जैसी आय, वैसा ही व्यय। रुपया एक ओर से आता है, दूसरी ओर से खर्च हो जाता है।

—श्रीरामकृष्णवचनामृत

संत कबीर की ६००वीं जयन्ती २८ जून

कबीर की गर्वोक्तियों की प्रासंगिकता

—अजय शर्मा

कबीरदास ने ऐसे काल में जन्म ग्रहण किया था जिस समय भारतवर्ष की सांस्कृतिक अवस्था अत्यन्त उतार पर थी। वे एक ऐसे कुल में उद्भूत हुए थे जिसे परम्परा से ज्ञानार्जन के अयोग्य समझा जाता था। कबीर को वैराग्य नहीं लेना पड़ा लेकिन वे वैराग्य के ज्ञाता हो सके, उन्हें योग मार्ग का साधक नहीं बनना पड़ा पर वे उसका तत्व समझ सके। वे दरिद्र और दलित थे इसीलिए अन्त तक वे इस श्रेणी के प्रति की गयी उपेक्षा को भूल न सके। वे मुसलमान थे अतएव सहज ही मुस्लिम साधनाओं को ग्रहण भी कर सके और उनकी कमजोरियों पर आघात भी कर सके। वे पण्डित नहीं थे पर काशी में रहकर नजदीक से पंडितों को देखने का अवसर उन्हें मिला था। उन्होंने अच्छी तरह देखा कि तथा-कथित बड़े-बड़े पण्डित ठीक उसी प्रकार के हाड़-मांस की बुराइयों भलाइयों के बने हुए हैं, जिस प्रकार एक साधारण जुलाहा। वे जमकर आघात कर सकते थे और फिर भी इस लापरवाही के साथ मानो उन पर कोई आघात कर ही नहीं सकता।

उनकी उक्तियां तीर की भांति सीधे हृदय में चुभ जाती हैं। यह विश्वास उनमें इतनी अधिक मात्रा में था कि कभी-कभी पण्डितों को उसमें गर्वोक्ति की गन्ध आती है। उनमें युग प्रवर्तक का विश्वास था और लोकनायक की हमदर्दी। इसलिए वे एक नया युग उत्पन्न कर सके।

अपने पदों में उन्होंने पण्डित को सम्बोधित किया है। लेकिन उनमें चिढ़ या कटुता नहीं है, अपने प्रति एक विश्वास है। उन्होंने शेख को सम्बोधित किया है और इस साहस के साथ, मानो वह एक अदना आदमी है। उन्होंने अवधूत को पुकार के कहा है और इस तरह कहा है मानो अवधूत को उनसे बहुत कुछ सीखना है। उन्होंने अपने राम को भी कुछ इस ढंग से पुकारा है मानो वे उनके अंग हों। इन सभी उक्तियों में उनका अपूर्व आत्म विश्वास, अपने प्रति अवज्ञा का अभाव और साथ ही सरलता स्पष्ट मालूम होती है।

वर्तमान समय राजनीतिक दृष्टि से जितना संकटपूर्ण है धर्म, समुदाय और जाति के नाम पर पूरे देश में जो अराजकता, आतंक और भय व्याप्त है, मानव-मानव के बीच में भेद और घृणा की जो दीवार बढ़ती जा रही है, असुरक्षा की जो भावना पूरी संस्कृति को नष्ट करने में तत्पर है, उससे त्राण पाने में कबीर की वाणी अमोघ अस्त्र का कार्य करती है।

कबीर मानवतावाद के सच्चे समर्थक हैं। उनमें उनका समाज सुधारक, धर्म समन्वयकारी और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य प्रतिष्ठापक रूप अधिक प्रतिभामय दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने व्यक्ति अथवा व्यष्टि के अवसर पर प्रभूत वैभन्य, वैचित्र्य,

ईर्ष्या, द्वेष, कलह, वैमनस्य आदि को पाया है। वस्तुतः यही समाज का रूप इस वैचित्र्य द्वैत से व्यक्ति अथवा जीव को उठाकर एक अद्वैत भूमि पर प्रतिष्ठित कराने के साधनों और उपकरणों का अथक प्रयास कबीर के काव्य में मूलरूप से अंकित हुआ है। जिन धर्म-रूढ़ियों और हिन्दू-मुस्लिम भेदों के प्रतिकूल सन्त कबीर ने संघर्ष किया था, वही रुढ़ियां और भेद उनके स्वर्ग-प्रयाण के साथ ही आपस में टकराने लगीं।

भारतीय चिन्तन परम्परा के अन्तर्गत कबीर के व्यक्तित्व में निखार आ जाता है और वे उस समय के समाज, धर्म एवं काल से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाते जिनसे युगीन क्रान्ति को जन्म मिलता है। उस समय वैदिक, जैनधर्म, बौद्धधर्म, शैव धर्म, इस्लाम धर्म तथा उनके अनेक सम्प्रदाय प्रचलित रहे। वस्तुतः कबीर के आचार-विचार और अक्खड़पन, खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति आदि बहुत कुछ परम्परागत है।

कबीर ने अपने काव्य में सामाजिक विचार एवं लोक चेतना के अन्तर्गत जाति, वर्ण, परिवार एवं नारी सम्बन्धी मान्यताओं का उल्लेख किया है। कबीर ने समाज के वाह्य आडम्बर, अन्ध-विश्वासों, परम्परागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोह किया है, चाहे वे हिन्दुओं में हों अथवा मुसलमानों में हों। जहाँ भी खामियां दिखायी पड़ी उन्होंने उनकी आलोचना की। समाज में जड़ें जमाकर अपने अस्तित्व को जबरदस्त बनाकर चले आ रहे व्यवहारों से मानव समाज को मुक्त करने के लिए, मानव-मानव के बीच हार्दिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए संघर्ष इनका प्रमुख लक्ष्य था।

कबीर सामाजिक संग्राम के बड़े योद्धा थे। वस्तुतः पण्डित को कसाई कहने का साहस और किसी जुलाहे में नहीं था। पण्डित हों चाहे मौलवी, गुरु हों चाहे पीर, योगी हों चाहे फकीर, हिन्दू हों चाहे मुसलमान, यदि वह सच्चाई के मार्ग से अलग हैं तो कबीर ने उनको चेतावनी दी है, उनकी खिल्ली उड़ायी है, उनपर व्यंग्य और उपहास किया है। उन्होंने सहज सात्विक जीवन-पद्धति को महत्व दिया है।

सन्त कबीर की वाणी में यह ओज, यह उत्कर्ष यह निष्पक्षता एवं यह दृढ़ता इसलिए है कि वे पूर्णतः लोकवादी हैं। भारतीय लोक जीवन में स्वच्छता है एवं परोपकारनिरता है। फलतः लोक के प्रति निष्ठावान सन्त निरन्तर पाप से दूर रहता है तथा दूसरे को ठगने की अपेक्षा स्वयं ठगाना श्रेयस्कर मानता है। लोक जीवन सात्विक है, समन्वयवादी है, साथ-साथ चलना एवं दूसरे के सुख-दुख में सहभागी होना लोक की सर्वोपरि आस्था है।

कबीर की दृष्टि में जाति एक ही है, वह है मानव जाति। सारी मानव जाति परमतत्व की ओर जा सकती है। यही उनका सन्देश है। नारी माया के रूप में सामने आती है। चारित्रिक भ्रष्टता में सहयोग देनेवाली स्त्री और परस्त्री के संग सम्बन्ध रखने वाले पुरुष की आलोचना की है। कबीर ने नारी को माया कहकर उसकी भर्त्सना की है। कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण जाति वर्ण, नारी सम्बन्धी मान्यताएं, भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि के रूप में सदैव वर्तमान रहेंगे। इनके श्रेष्ठ विचार युग-युग तक देशवासियों को सदैव प्रेरणा देते रहेंगे।

समाचार एवं सूचनाएँ

रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर का प्रथम वार्षिकोत्सव

पोरबन्दर। रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द मेमोरियल, पोरबन्दर का प्रथम वार्षिकोत्सव बड़े उत्साह एवं श्रद्धापूर्वक १९ से २१ अप्रैल, १९९९ तक आयोजित किया गया। इन तीनों दिन संध्या में जन सभा का आयोजन हुआ जिसमें क्रमश: 'इक्कीसवीं शताब्दी के लिए श्रीरामकृष्ण का सन्देश', 'सब की माँ — श्री माँ सारदा देवी', तथा 'वर्तमान भारत को स्वामी विवेकानन्द का सन्देश' विषय पर व्याख्यान दिये गये। स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज, सचिव, रामकृष्ण आश्रम, रायपुर (म० प्र०), स्वामी जितात्मानन्दजी महाराज, अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट एवं स्वामी आदिभवानन्दजी महाराज, सचिव, रामकृष्ण मिशन, लिम्बड़ी वक्तृता देने के लिए विशेष रूप से आमंत्रित किये गये थे।

२० अप्रैल, १९९९ को प्रातः ८ से मध्याह्न १२ बजे तक एक आध्यात्मिक शिविर का आयोजन किया गया था जिसमें रामकृष्ण संघ के साधुओं के प्रवचन, भजन, ध्यान एवं प्रश्नोत्तर के सत्र आयोजित हुए थे। सत्रान्त में भक्तों ने रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर के सचिव स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज से अनुरोध किया कि वे ऐसे उत्सवों का अवसर-आयोजन करते रहें क्योंकि आध्यात्मिक शिविर से उन्हें यथेष्ट लाभ हुआ है।

स्वामी व्योमरूपानन्दजी महाराज की महासमाधि

नागपुर, २२ मई। अत्यन्त दुःख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि रामकृष्ण मठ, नागपुर के भूतपूर्व तथा द्वितीय अध्यक्ष स्वामी व्योमरूपानन्दजी महाराज, रविवार, दिनांक ९ मई १९९९ को सायं ७.२० बजे अपनी नश्वर काया का परित्याग कर ब्रह्मलीन हो गये। महासमाधि के समय उनकी आयु लगभग ९१ वर्ष की थी। उन्होंने इस मठ में सन् १९३७ ई० में प्रथम ब्रह्मचारी के रूप में योगदान दिया था। विगत ६१ वर्षों तक एक आदर्श साधु का जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने इस मठ के विभिन्न कार्यों में अपने साधु-जीवन की अमिट छाप रख छोड़ी है।

स्वामी व्योमरूपानन्द जी का जीवन सरल, प्रेम, त्याग एवं वैराग्य भाव से पूर्ण था। वे शिवस्वरूप थे। उनके कार्यकाल में नागपुर मठ से मराठी एवं हिन्दी में रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा एवं वेदान्त विषयक अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ और विदर्भ क्षेत्र में रामकृष्ण-भावधारा का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ।

स्वामी व्योम रूपानन्दजी महाराज की पावन स्मृति में गत २१ मई को रामकृष्ण मठ, नागपुर तथा बेलुड़ मठ में विशेष पूजा, हवन तथा भंडारा का आयोजन किया गया।

पटना में स्वामी विवेकानन्द की प्रतिमा का अनावरण

पटना, २६ मई। रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना द्वारा पटने के प्रमुख स्थल मौर्या कम्पलेक्स में गत २३ मई को स्वामी विवेकानन्द की १४ फीट ऊँची कांस्य प्रतिमा की स्थापना की गयी। इस भव्य प्रतिमा का अनावरण रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर रामकृष्ण संघ के अनेक वरिष्ठ साधुओं के साथ बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री श्री लालू प्रसाद यादव तथा वर्तमान मुख्यमंत्री श्रीमती रावड़ी देवी की उपस्थिति से समारोह में उल्लास का वातावरण छा गया। श्री लालू प्रसाद यादव ने इस अवसर पर बोलते हुए स्वामी विवेकानन्द को सामाजिक न्याय का प्रखर पक्षधर बताया तथा श्रीमती रावड़ी देवी ने स्वामीजी को गरीबों का मसीहा कहा। स्वामी आत्मस्थानन्दजी महाराज ने रामकृष्ण मिशन आश्रम के प्राङ्गण में आयोजित भक्तों की सभा को सम्बोधित किया तथा दो दिन दीक्षार्थियों को दीक्षा भी प्रदान की। इस अवसर पर आश्रम के सचिव स्वामी चन्द्रानन्दजी महाराज के सम्पादकत्व में एक स्मारिका का प्रकाशन भी किया गया।

प्रेरक-प्रसंग

चुगलखोर का सिर नीचा

श्री श्रीमाँ सारदादेवी माता काली का श्रृंगार बड़े प्रेम से कर रही थीं। उनके पास अन्य अनेक महिलाएँ बैठी थीं और श्रृंगार के कार्य में उनकी सहायता कर रही थीं। तभी एक महिला ने माँ सारदादेवी के कान में धीरे से एक महिला की ओर संकेत करते हुए कहा—आप इस महिला को काली की मूर्ति न छूने दिया करें।

— क्यों भला, क्या दोष है इसमें ?—सारदादेवी ने पूछा।

—चरित्र को लेकर इसके विषय में अनेक बातें सुनने में आती हैं। कुल की दृष्टि से भी यह महिला निम्न कोटि की है।

माँ सारदादेवी महिला की चरित्रहीनता व कुलहीनता के विषय में पहले से ही जानती थीं, लेकिन जिस महिला ने शिकायत की थी, वह भी पसीने से तर-बतर थी। उसके शरीर से दुर्गन्ध आ आ रही थी। नाक में भी मैल लगा हुआ था तथा चरित्र-दोष के कारण वह पति द्वारा परित्यक्ता थी।

माँ सारदादेवी ने उस महिला से पूछा—गंगा में स्नान करने से क्या गंगा की पवित्रता नष्ट हो जाती है ? उसमें सभी प्रकार के लोग नहाते हैं, लेकिन गंगा के लिए कोई ऊँचा-नीचा नहीं, कोई पापी या धर्मात्मा नहीं। ठीक इसी प्रकार माता काली के चरणों में सभी को समान स्थान प्राप्त है।

□

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर
छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

दूरभाष : 06152-22639

स्वामी विवेकानन्द प्रतिमा-स्थापन

नम्र निवेदन

प्रिय महोदय/महोदया,

आपको यह सूचित करते हुए हमें परम प्रसन्नता हो रही है कि पश्चिमी जगत में भारतीय धर्म और अध्यात्म की विजय पताका लहराने के उपरान्त दिग्विजयी **स्वामी विवेकानन्द** के भारत प्रत्यागमन के शताब्दी-महोत्सव वर्ष की स्मृति में स्वामी विवेकानन्द की आदमकद कांस्य-प्रतिमा की स्थापना करने का शुभ संकल्प छपरा के नागरिकों ने लिया है। छपरा स्वामीजी के गुरुभाई स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) के जन्म-जिला का मुख्यालय है।

मनुष्य-निर्माण, चरित्रगठन, सामाजिक न्याय, सर्वधर्म समभाव एवं भारत के पुनर्निर्माण के सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द को प्रतिमा एक विद्युत-तरंग का कार्य करेगी एवं वर्तमान पीढ़ी के लिए प्रेरणा का प्रकाशपुंज सिद्ध होगी—यह निर्विवाद है।

अतएव, आपसे हमारा नम्र निवेदन है कि इस याज्ञिक कार्य में उदारतापूर्वक दान देकर हमारे विनम्र प्रयास का सहभागी बनने की कृपा करें। इस महनीय कार्य में बड़े से बड़ा दान भी अल्प है और छोटे से छोटा दान भी महत्तम है।

स्वामीजी की कृपा आप पर निरन्तर बरसे—यही प्रार्थना है।

प्रेम और शुभकामनाओं सहित—

स्वामी विवेकानन्द चरणाश्रित
आपका
(डॉ० केदारनाथ लाभ)
सचिव

चेक या ड्राफ्ट रामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा (बिहार) के नाम से भेजने की कृपा करें। नकद रुपये मनीआर्डर से भेजे जा सकते हैं।

एक निवेदन

भगवान श्री रामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चरण रेणु से तीर्थीकृत तथा स्वामी विवेकानन्द स्मृतिविजड़ित आकर्षण केन्द्र ज्योति लिंग बाबा वैद्यनाथ की इस पुनीत नगरी देवघर में रामकृष्ण संघ द्वारा परिचालित प्रथम शिक्षण संस्थान रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ की स्थापना सन् 1922 में हुई। भगवान श्री रामकृष्ण देव के अन्यतम पार्षद श्रीमत् स्वामी तुरीयानन्दजी महाराज से अनुप्राणित तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षादर्शों पर आधारित 75 वर्ष पूर्व प्रारम्भ की गई यह शिक्षण संस्थान आज पूरे भारतवर्ष में विख्यात है। रामकृष्ण संघ के द्वितीय अध्यक्ष परमपूजनीय श्रीमत्स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने भविष्यवाणी की थी—'इस विद्यापीठ के माध्यम से भविष्य में बहुत महान कार्य सम्पन्न होगा, इसका भविष्य बड़ा ही उज्ज्वल है।'

विद्यापीठ के बहुमुखी कर्म-प्रवाह में आर्थिक अवस्था से विपन्न 400 छात्रों के लिए आज 'विवेकानन्द बालकेन्द्र' मुख्य इकाई के रूप में कार्यरत है जिसमें निःशुल्क शैक्षिक तथा क्रीड़ा संबंधी एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इस अनुन्नत वर्ग को ही नवीन भारत का आधार बनाते हुए स्वामीजी ने कहा था—

"एक नवीन भारत निकल पड़े। निकले हल पकड़कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुए, माली, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकान से, भुजवा के भाड़ से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों से, पहाड़ों—पर्वतों को भेदते हुए।' इस वाणी को मद्देनजर रखते हुए 'सबसे पीछे पड़े हुए, सबसे नीचे दबे हुए' वर्ग को अपने विनम्र भाव से शिक्षित करने के प्रयास में 'विवेकानन्द बाल केन्द्र' अनवरत संलग्न है।

संप्रति इन छात्रों की यथोक्त शिक्षा के लिए एक स्थायी भवन की नितान्त आवश्यकता है जिसकी अनुमानित लागत 10 लाख रुपये है। अतः रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर की ओर से मैं इस महान एवं पवित्र कार्य को सम्पन्न करने के लिए आप उदारचेताओं से सहयोग की महती प्रार्थना करता हूँ। इति।

निवेदक

स्वामी सुवीरानन्द

सचिव

रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर

नोट :—1. रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के नाम से ही चेक या ड्राफ्ट भेजे जाएं।

2. रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान धारा 80 [G] के अनुसार आयकर मुक्त है।

डाक पंजीयित संख्या - सी.एच.पी.१४-८३

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं शिवशक्ति प्रिण्टर्स, सैदपुर, पटना-४ में मुद्रित।
सम्पादक : डॉ केदारनाथ लाभ